Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कविवर अर्हद्दास-विरचित

भव्यजनकण्ठाभरणम्

अनुवादकर्ता-
पं. कैलासचन्द्रजी शास्त्री,
प्रधानाध्यापक-स्याद्वाद महाविद्यालय, बनारस.

- प्रकाशक -
जीवराज गौतमचंद दोशी
संस्थापक-जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर.

- मुद्रक -
फुलचंद हिराचंद शाह
श्री वर्धमान छापखाना, १३५, शुक्रवार, सोलापूर.

वीर संवत् २४८१] मूल्य १। रु. [इसवी सन १९५४

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कविवर अर्हद्दास-विरचित

भव्यजनकण्ठाभरणम्

अनुवादकर्ता-

पं. कैलासचन्द्रजी शास्त्री,

प्रधानाध्यापक-स्याद्वाद महाविद्यालय, बनारस.

प्रकाशक-

जीवराज गौतमचंद दोशी

संस्थापक

जैन संस्कृति संरक्षक संघ,

[illegible] कैलास सागर सूरि ज्ञान मन्दिर
श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र
कोबा, जि. गांधीनगर, पीन-३८२००९

वीर संवत् २४८१] मूल्य १। रु. [इसवी सन १९५४

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रकाशकोंका वक्तव्य

भव्यजनकण्ठाभरणम् ग्रन्थ कविवर अर्हद्दासका बनाया हुआ है। यह ग्रन्थ मूलमें संस्कृत पद्यमें है। काव्यदृष्टीसे पं. कैलासचंद्र शास्त्रीजीने प्रस्तावनामें इसकी योग्यताका वर्णन किया है। उससे इसकी योग्यताका परिचय हो सकता है। जैन गृहस्थोंको यथार्थ देवगुरुका श्रद्धान होनेसेही सम्यक्त्वकी उत्पत्ति होना संभव है, इसीलिये इस ग्रन्थमें उसकाही विशेष रूपसे विवेचन कर सच्चे देवकी कडी पहिचान कर देनेका ग्रन्थकारने परिश्रम किया है। उसको कोई सज्जन अन्य देवोंकी निंदा समझते हैं। वास्तविकरूपसे वह निंदा नहीं। किन्तु सच्चे देवका स्वरूप समझमें आनेसे उस विषयका भ्रम नष्ट होनेकाही जादा संभव है, इसलिये इसका प्रकाशन करना इष्ट समझा गया है।

संस्कृत पद्यमय भाषाका ज्ञान आजकल सर्वत्र प्रचलित न होनेसे इसका हिन्दी भाषामें अनुवाद पंडितवर कैलासचंद्रजी शास्त्री प्रधानाध्यापक स्याद्वादपाठशाला बनारसके तरफसे करवाया गया है। वह अत्यंत सुंदर और सरल भाषामें उन्होंने कर दिया है। इसलिये उनको शतशः धन्यवाद हैं। उनके अनुवादसे भारतवर्षके जैनियोंको इस काव्यका आस्वाद मिलनेसे उनको सच्चे देवका यथार्थ ज्ञान होकर सम्यक्त्वकी प्राप्ति हो ऐसी हम प्रभुसे प्रार्थना करते हैं।

सोलापुर
विक्रम संवत् २०११
निर्वाण संवत् २४८१
कार्तिक वदि ८

जीवराज गौतमचंद
संस्थापक
जैन संस्कृति संरक्षक संघ
सो ला पु र.

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

– प्र स्ता व ना –

कविवर अर्हद्दास का भव्यकण्ठाभरण सचमुचमें भव्यजीवोंके द्वारा कण्ठमें आभरण रूपसेही धारण करने के योग्य है। दो सौ बयालीस पद्य-मणियोंसे ग्रथित इस कण्ठाभरणमें आभरणकारने देव, शास्त्र, गुरु और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप निबद्ध किया है। और एक मुमुक्षु भव्यको इन छहोंका यथार्थ स्वरूप हृदयंगम करना अत्यावश्यक है।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रको यद्यपि रत्नत्रय कहा जाता है क्योंकि इन तीनोंकी पूर्णताही मोक्षका कारण है, किन्तु इन तीनोंमेंभी सम्यग्दर्शनही प्रधान है। क्योंकि सम्यग्दर्शनके विना सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका होना उसी तरह असंभव है, जैसे बीजके अभावमें वृक्षका होना। तथा यद्यपि देव, शास्त्र और गुरु इन तीनोंकेही यथार्थ श्रद्धानको सम्यग्दर्शन कहा है, फिर भी इन तीनोंमेंभी देवही प्रधान है। क्योंकि देव अथवा आप्तकी वाणीही शास्त्र है, और उसके मार्गपर चलनेवालेही गुरु हो सकते हैं। अतः ग्रन्थकारने अपने इस लघुकाय ग्रन्थमें देव और सम्यग्दर्शनका विस्तारसे वर्णन किया है तथा इन दोनोंमेंभी देवके स्वरूपके वर्णनकोही मुख्यता दी है जो उचित ही है।

ग्रन्थ-परिचय और शैली

प्रथमही सात पद्योंके द्वारा पञ्चपरमेष्ठी, जिनागम और गौतम आदि जिनयोगियोंका स्तवन करके ग्रन्थकारने भव्यकण्ठाभरणके निर्माणकी प्रतिज्ञा की है। तत्पश्चात् एकही पद्यके द्वारा ग्रन्थमें वर्ण्य

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषयका निर्देश अत्यन्त सुन्दर सम्बद्ध और संक्षिप्त ढंगसे किया गया है । लिखा है–

सर्वोऽप्यदुःखं सुखमिच्छतीह तत्कर्मनाशात्स च सच्चरित्रात् ।
सज्ज्ञानतस्तत्सुदृशस्तदाप्ताद्यास्थैव सा मे तदमुष्य वाच्या ॥ ९ ॥

इसके पश्चात् आप्तके स्वरूपकी चर्चा आरम्भ होती है और वह भी तर्कपूर्ण शैलीमें । आप्तकी पहचानके लिये आप्ताभासों-बनावटी आप्तोंको भी जान लेना आवश्यक है। अतः ग्रन्थकारने प्रायः सभी आप्ताभासोंका विवेचन विस्तारसे किया है और अपने जानते हुए उन्होने किसीको छोड़ा नहीं है। क्योंकि शिव, शिवके परिकर गङ्गा, पार्वती, गणेश, वीरभद्र, ब्रह्मा, सरस्वती, नारद, विष्णु, राम, परशुराम, बुद्ध, इन्द्र, आठों दिक्पाल, सूर्य, चन्द्रमा, बुध, मंगल आदि ग्रह, भैरव, सर्प, भैरवियां, गोमाता, पृथ्वी, नदी, समुद्र आदि जितनेभी देवी देवताके रूपमें पूजे जाते हैं उन सभीकी समीक्षा की गई है। जैनों-मेंसेभी श्वेताम्बर और यापनीयोंकी तथा ठेठ दिगम्बरोंमेंसेभी काष्ठासंघी, द्राविडसंघी, निष्पिच्छसंघी और निष्कुण्डिका-संघवालोंकी आलोचना नहीं छोड़ी है ।

हिन्दू देवताओंकी समीक्षाको देखनेसे यह स्पष्ट है कि अर्हद्दास हिन्दू पुराणोंके भी अच्छे ज्ञाता थे। क्यों कि उन्होंने जिस देवताके विषयमें जो बात कही है वह सभी पुराणोंमें उपलब्ध है। अमूलक बात कोई नहीं पाई गई है ।

हिन्दू देवताओंकी आलोचना करते हुए बीचमें वैदिकी हिंसा-कीभी चर्चा आगई है। और उसके सम्बंधसे मांस भक्षण और मद्य-पानकी चर्चा करते हुए उन्हें निन्दनीय ठहराया है। मांस भक्षण

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

करनेवालोंकी निन्दा करते हुए एक बात बड़े मार्के की कहीं है, जो अन्यत्र देखनेमें नहीं आई। लिखा है–

लोकमें मरे हुए प्राणियोंके कलेवर को शव कहते हैं। और जहां ये शव जलाये जाते हैं, उसे श्मशान कहते हैं।

अतः जो मांस खाते हैं वे शवभक्षी हैं और उनका घर, जहां मांस पकाया जाता है, श्मशान है। (श्लोक ५०)

इस प्रकार ११६ पद्योंतक कुदेवोंकी समीक्षा करनेके पश्चात् समन्तभद्र आदि तार्किकोंका अनुसरण करते हुए दार्शनिक शैलीसे सच्चे देवका स्वरूप बतलाया है, जो बहुतही मनोरम है– और संक्षेपमें तर्क और श्रद्धाके सुन्दर समन्वयको लिए हुवे है। पद्य २१ में तीर्थङ्करका अर्थ करते हुए लिखा है–'सन्मार्ग को दिखानेवाले वचनों को तीर्थ कहते हैं क्योंकि वे वचन संसाररूपी समुद्रसे पार उतारते हैं और उन वचनोंके कर्ताको तीर्थङ्कर कहते हैं।'

आप्तके स्वरूप वर्णनके पश्चात् जिनवाणीका माहात्म्य बतलाते हुए एक एक पद्यसे सातों तत्त्वोंका स्वरूप भी दिखलाया है। तत्पश्चात् सम्यग्दर्शनका वर्णन है। उसका वर्णन करते हुए तीन मूढता, आठ मद और आठ अंगोंका स्वरूपभी दर्शाया है। तत्पश्चात् सम्यग्दर्शनका माहात्म्य बतलाकर–सज्जाति आदि सात परमस्थानों का स्वरूपभी एक एक पद्यसे बतलाया है। श्रावकाचारोंमें अन्य सब वर्णन तो मिलते हैं। किन्तु सप्त परमस्थानोंका स्वरूप नहीं पाया जाता है। अस्तु; जो अन्तमें दो दो पद्यों से सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चरित्रका स्वरूप दर्शाकर मोक्षमार्गको बतलाते हुए पंच–परमेष्ठीका स्वरूपभी बतलाया है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ग्रन्थमें व्यर्थ विस्तार नहीं है। संक्षेपमें आवश्यक बातको निबद्ध करना ग्रन्थकारकी अपनी विशेषता है। और इस दृष्टीसे उनकी यह रचना उल्लेखनीय है।

ग्रन्थकार अर्हद्दास

इस ग्रन्थके रचयिताका नाम अर्हद्दास है जो ग्रन्थके अन्तिम पद्यमें दिया हुआ है। इनके बनाये हुए दो ग्रन्थ औरभी उपलब्ध हैं और दोनोंही प्रकाशित हो चुके हैं। उनका नाम है मुनिसुव्रत काव्य और पुरुदेव चम्पू। मुनिसुव्रत काव्यमें मुनिसुव्रतनाथ नामक तीर्थङ्करका और पुरुदेवचम्पूमें भगवान् ऋषभदेवका चरित वर्णित है। यों तो दोनोंही रचनाएं कवित्वकी दृष्टिसे आदरणीय हैं किन्तु पुरुदेव-चम्पूकी गद्य तो महाकवि हरिचन्द्रकी गद्यसे टक्कर लेती है।

दोनों काव्यरत्नोंके अवलोकनसे स्पष्ट है कि अर्हद्दास अच्छे कवि थे और उनके इस कवित्वके प्रभावसे उनका भव्यकण्ठाभरणभी अछूता नहीं है। किन्तु भव्यकण्ठाभरणसे उनके कवित्वकाही नहीं अपि तु बहुश्रुतत्त्वकाभी परिचय मिलता है। जैसा हम लिख आये हैं— 'हिन्दू पुराणोंके वे पण्डित थे और उन्होंने उनका अच्छा अनुशीलन किया था' इसके सिवाय वे तार्किकभी थे और उन्होंने समन्तभद्रके आप्तमीमांसा आदि ग्रन्थोंका विशेष अध्ययन किया था ऐसा प्रतीत होता है। क्यों कि आप्तका स्वरूप बतलाते हुए उन्होंने आप्तमीमांसाकी आप्तविषयक आरम्भिक कारिकाओंका पूरा अनुसरण किया है। तथा यद्यपि सागारधर्मामृतके रचयिता पं. आशाधरजीका स्मरण उन्होंने अपने तीनों रचनाओंमें अन्तमें बड़ी श्रद्धाके साथ किया है और उन्हींकी उक्तियोंसे अपनेको प्रबुद्ध हुआ बतलाया है, तथापि

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भव्यजनकण्ठाभरणमें समन्तभद्रके रत्नकरण्डका प्रभाव स्पष्ट है। उसका सम्यग्दर्शनवर्णन तो रत्नकरण्डकाही ऋणी है।

समय

यतः कविवरने अपनी तीनोंही रचनाओंके अन्तमें पं. आशाधरजीका उल्लेख किया है और आशाधरजीने वि. सं. १३०० में अपने अनगार धर्मामृतकी टीका पूर्ण की थी, अतः यह तो स्पष्टही है कि इससे पहले अर्हद्दास नहीं हुए। किन्तु प्रश्न यह है कि वे आशाधरके समकालीन थे या उनके पश्चात् हुए हैं ? क्यों कि उन्होने अपने ग्रन्थोंमें जिस ढंगसे आशाधरका उल्लेख किया है उससे यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वह आशाधरके समकालीन थे। उनके उल्लेख इस प्रकार हैं——

मुनिसुव्रत काव्यका अन्तिम पद्य इस प्रकार है——

मिथ्यात्वकर्मपटलैश्चिरमावृते मे युग्मे दृशोः कुपथयाननिदानभूते।
आशाधरोक्तिलसदञ्जनसम्प्रयोगैः स्वच्छीकृते पृथुलसत्पथमाश्रितोऽस्मि ॥

अर्थात्- मेरे नयन-युगल चिरकालसे मिथ्यात्वकर्मके पटलसे ढके हुये थे और मुझे कुमार्गमें लेजानेमें कारण थे। आशाधरकी उक्तिरूप उत्तम अंजनसे उनके स्वच्छ होनेपर मैंने जिनेन्द्रदेवके महान् सत्पथका आश्रय लिया।

पुरुदेवचम्पूका अन्तिम पद्य है-

'मिथ्यात्वपंककलुषे मम मानसेऽस्मिन् आशाधरोक्तिकतकप्रसरैः प्रसन्ने।
उल्लासितेन शरदा पुरुदेवभक्त्या तच्चंपुदंभजलजेन समुज्जजृम्भे ॥'

अर्थात्- मेरा यह मानसरूपसरोवर मिथ्यात्वरूपी कीचडसे

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कलुषित था। आशाधरकी उक्तिरूपी निर्मलीके प्रभावसे जब वह निर्मल हुआ तो ऋषभदेवकी भक्तिसे प्रसन्न हुई शरदऋतुके द्वारा उसमेंसे चम्पूरूप कमल विकसित हुआ।

उक्त दोनोंही पद्योंसे इतनाही स्पष्ट होता है कि आशाधरकी सूक्तियोंसे उनकी दृष्टि अथवा मानस निर्मल हो गया था।

मुनिसुव्रत काव्यके उक्त अन्तिम पद्यसे पूर्व एक पद्य और भी उसमें है—

धावन् कापथसंभृते भववने सन्मार्गमेकं परम्
त्यक्त्वा श्रान्ततरश्चिराय कथमप्यासाद्य कालादमुम्।
सद्धर्मामृतमुद्धृतं जिनवचःक्षीरोदधेरादरात्
पायं पायमितश्रमः सुखपदं दासो भवाम्यर्हतः ॥ ६४ ॥

अर्थात्– कुमार्गोंसे भरे हुए संसाररूपी वनमें जो एक उत्तम सन्मार्ग था उसे छोडकर बहुत काल तक भटकता हुआ मैं अत्यन्त थक गया। तब किसी प्रकार काललब्धिवश उसे पाया। उसे पाकर जिनवचनरूपी क्षीरसमुद्रसे उद्धृत किये हुए और सुखके स्थान समीचीन धर्मामृतको आदरपूर्वक पी पीकर थकान रहित होता हुआ मैं अर्हन्त भगवान का दास होता हूं।

इस पद्यमें आया हुआ धर्मामृत पद अवश्यही आशाधरके धर्मामृत नामक ग्रन्थका जिसके सागारधर्मामृत और अनगारधर्मामृत दो भाग हैं-सूचक है। अतः उक्त पद्योंके द्वारा अर्हद्दासके सम्बन्धमें केवल इतनाही पता चलता है कि पहले वह कुमार्गमें पड़े हुए थे। आशाधरके धर्मामृतने और उनकी उक्तियोंने उन्हें सुमार्गमें लगाया। सम्भव है कि जैन धर्मानुयायी न होकर अन्यधर्मानुयायी हों। और इसीसे

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हिन्दू पुराणोंके वे विशिष्ट अभ्यासी रहे हों। पश्चात् आशाधरकी सूक्तियोंसे प्रभावित होकर वे जैनधर्मके अनुयायी होगये हो–जैसा कि उनके 'दासो भवाम्यर्हतः' पदसेभी ध्वनित होता है।

श्री नाथूरामजी प्रेमीकाभी अनुमान है कि अर्हद्दास नाम न होकर विशेषण जैसाही माछ्म होता है। सम्भव है उनका वास्तविक नाम कुछ और हो। अस्तु; अतः उक्त पद्योंसे तो यह प्रमाणित नहीं होता कि अर्हद्दास आशाधरके समकालीन थे। किन्तु भव्यकण्ठाभरणमें जो पद्य दिया है वह इस समस्यापर कुछ विशेष प्रकाश डालता है। पद्य इसप्रकार है—

सूक्त्यैव तेषां भवभीरवो ये गृहाश्रमस्थाश्चरितात्मधर्माः।
त एव शेषाश्रमिणां सहाय्या धन्याः स्युराशाधरसूरिमुख्याः ॥२३६

आचार्य उपाध्याय और साधुका स्वरूप बतलानेके पश्चात् ग्रन्थकार कहते हैं कि उन आचार्य वगैरहकी सूक्तियोंके द्वाराही जो संसारसे भयभीत प्राणी गृहस्थाश्रममें रहते हुए आत्मधर्मका पालन करते हैं और शेष ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और साधु आश्रममें रहनेवालोंकी सहायता करते हैं, वे आशाधरसूरि प्रमुख श्रावक धन्य हैं।

इसमें ग्रन्थकारने प्रकारान्तरसे आशाधरजीके वैयक्तिक जीवनकी चर्चा की है और बतलाया है कि वे गृहस्थ अवस्थामें रहते हुएभी जैनधर्मका पालन करते थे तथा अन्य आश्रमवासियोंकी सहायता किया करते थे। इन अन्य आश्रमवासियोंमें स्वयं अर्हद्दासभी हो सकते हैं। और आशाधरजीकी इस परोपकारवृत्तिका साक्षात् अनुभव उन्होने स्वयं किया हो ऐसा लगता है। सूक्तिका मतलब केवल

१ जैन साहित्य और इतिहास पृ. १४३।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ग्रन्थरूप सूक्तिसेही नहीं है, प्रत्यक्षमें कहे जानेवाले सद्वचनभी सूक्तिही हैं। तथा अपनी तीनों रचनाओंमें अपने सम्बन्धमें और कुछ न कहकर, अपने उपकारी रूपमें केवल आशाधरजीके स्मरण करनेसेभी यही अधिक संगत प्रतीत होता है कि एक कुमार्गगामी व्यक्तिको अपने सद्वचनोंसे सम्बोध सम्बोधकर पं. आशाधरजीने उसे अर्हद्दास बना दिया था। अतः यही अधिक संभव लगता है कि कविवर अर्हद्दास पं. आशाधरजीके लघु समकालीन रहे हों। यदि यह संभावना ठीक हो तो उनका समय विक्रमकी तेरहवीं शतीका अन्तिम चरण और चौदहवीं शतीका प्रथम चरण होना चाहिये।

अनुवादके सम्बन्धमें

अन्तमें अनुवादके सम्बन्धमेंभी दो शब्द कह देना अनुचित न होगा। ग्रन्थकी जो प्रतिलिपि या प्रेसकापी मुझे प्राप्त हुई– वह सन्तोषजनक नहीं थी। अन्य प्रति कहींसे मिली नहीं। अतः उसीके ऊपरसे कुछ रफ़सा अनुवाद करके भेज दिया था यहभी आशा नहीं थी कि वह जल्दी छपही जायेगा। अतः जो कुछ लिखा उसका प्रूफभी मैं नहीं देख सका इससे एक दो जगह अनुवादमें कुछ विश्रृंखलतासी होगई है। उदाहरणके लिये नौवे पद्यमें कुछ वाक्यांश अतिरिक्त छप गया है। आशा है विद्वान्पाठक सुधार लेंगे। यह अनुवाद डॉ. ए. एन. उपाध्ये कोल्हापुरकी प्रेरणासे हुआ है उनका अत्यन्त आभारी हूं।

बनारस
दीप-मालिका
वीर नि. सं. २४८१

कैलासचन्द्र शास्त्री.

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भव्यजनकण्ठाभरणके श्लोकोंका

अकाराद्यनुक्रम।

श्लोकः	पृष्ठसंख्या
अथाशरीरानुपमाम्बुजाक्षी	३
अजाद्भवो भाविनमात्मशापम्	१०
अजः प्रियामात्ममुखान्तराले	१३
अनल्परागः श्रियमम्बुजाक्षः	१५
अलं कलावैभवरूपवर्यम्	२०
अकारणद्वेष्ययमेक एव	२३
अप्याश्रिता आप्तधिया शिवाय	२५
अथाप्रमाणैरयथार्थवादि-	२६
अन्धा इवान्धैरबुधैरमीभिः	२७
अस्मादमून्श्वेतपटादिकाप्तान्	२९
अनाथनारीव्ययनैनसा किम्	३६
अङ्गारकोऽङ्गारवदुग्रवृत्तिः	३८
अशेषदोषावृतिविप्रमुक्तः	४३
अशोकवृक्षः सुरपुष्पवृष्टिः	४५
अशैः कृतामप्यनलं ग्रहीतुम्	४८
असह्यदुःखावसथे भवेऽस्मिन्	५५
अदोषिणस्तस्य वचोऽप्यदोषि	५६
अमूर्तमन्योऽन्यकृतोपकारं	५८
अस्त्रीत्वपुम्भावनपुंसकत्वम्	५८
अजीवतत्त्वं शरसङ्ख्यमत्र	५९

श्लोकः	पृष्ठसंख्या
असंयतोऽप्यच्छसुदृष्टिरङ्गी	७२
अष्टाधिकायामपि विंशतौ ये	८०
अर्च्याः सहार्थाभिधयेति सर्वैः	८२
आ	
आचार्यवर्याश्चरितानि शिष्यान्	१
आः कौरवान्पाण्डुसुतैरशेषान्	१६
आधारमप्याश्रितमप्यशेषम्	३५
आमन्त्रणाद्यत्पिबतोऽपि मद्य-	३९
आप्तोऽर्थतः स्यादमरागमाद्यैः	४२
आच्छिद्य दोषानपि घातिकर्मा-	४७
आस्थायिकानावमतुल्यमान-	४९
आत्मप्रदेशस्थितकर्म येन	६२
आसन्नभव्योत्तमभावकर्म-	६६
आस्तिक्यमस्तीति समस्ततत्त्वम्	७२
आत्माङ्गभेदावगमप्रभावात्	७९
आचार्यवर्याः स्वपदं दिशन्तु	८०
आराध्यमानामलदर्शनास्ते	८१
आप्तादिरूपामिति सिद्धमवेत्य	८५
इ	
इत्युक्तिमाकर्ण्य शिवाह्वयोऽपि	६

For Private And Personal Use Only

श्लोकः	पृष्ठसंख्या
इतीद्धरागादिसमस्तदोषाः	२५
इत्युज्ज्वलद्दोषगणैकगेहम्	२८
इति प्रसङ्गादपृथक्तदाप्ता-	४१
इति प्रमाणेन समर्थितो यः	४४
इति श्रियोऽस्यातिशया गुणाश्च	४७
इत्युक्तमेतत्खलु सप्तभेदम्	६२
इत्युक्तमाप्तादिकषट्करूपम्	८५
उ	
उवाह रागोदयतः पुलिन्दीम्	१२
उदेति हेतुद्वयतः सराग-	६४
उपेत्य शिष्यैरवितप्रमोदैः	८१
क	
कश्चित्पुमानाप्तगिरोऽस्ति वाच्यो	३
किं चैष नास्तीत्यखिलेऽपि देशे	५
कषायवेगैः कलुषीकृतात्मा	१५
करैरिनस्येव समीरणेन	४६
कल्याणकालेषु तथा स सद्यो	५३
कर्मास्मभावेन तदस्ति बद्धम्	६१
कायेन वाचा मनसा तु मिथ्या-	६९
कुदृष्टिकृत्यां शुभदृष्टिमातुः	७०
कलायसानीव रसानुषङ्गात्	७२
कश्चित्सुदृग्धीचरितान्यमूनि	७७
कल्पद्रुचिन्तामणिकामगव्यः	७९
कर्तुं तपः संयमदानपूजाः	८३

श्लोकः	पृष्ठसंख्या
ग	
गृह्णाति पाशं किमपि प्रचेताः	३५
गतिस्वभावात्तमनन्यसोऽपि	३९
गतिस्वभावोऽद्भुतमच्छतादि	४३
गुणोद्भवा निर्मलता च नित्यम्	४५
ज	
जिनागमक्षीरनिधिर्गभीरः	२
जाया विधेरस्तु सरस्वती सा	१५
जातेऽरिजाते ज्वरदाहमूर्च्छाः	१९
जिनागमस्यैति विरोधिवाचः	२९
जीवाङ्गभावे सदृशोऽपि सेव्यम्	३३
जशे परस्त्रीरतिजाखिलाङ्ग-	३४
जगत्त्रयीमप्यतथा विधातुम्	४५
जना गृहग्रामपुरीजनान्त-	५१
जितानृताङ्गाखिलरागरोष-	५५
जिनोक्तविद्यादिषु यत्र शक्तिः	७१
जिनत्वमेतज्जितघातिकर्मा	७५
त	
तेऽव्यापकाः स्युर्दधते नितान्तम्	२
ते साधवो मे ददतु स्वभूतिम्	२
तदाप्तरत्नं सकलार्थसिद्धेः	५
तथागतो वीक्ष्य खरान्स्मरार्तान्	२२
तथागतः सर्वजनेऽप्यमुष्मिन्	२३
ते दृष्टिबोधावृतिदृष्टिमोह-	२४
तत्सर्वथैकान्तमनेन तस्या-	२६

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्लोकः	पृष्ठसंख्या
तान्यप्रशस्तानि तदाश्रयाणि	२७
तान्याचरन्तः सपरिग्रहा ये	२७
ते यापनीसंघलुषो जनाश्च	२८
त्यक्ताखिलशोदितमुख्यकाल-	२९
तत्पलादेरपि जायमानो	३४
तृणं च धेनुर्महिषीजलं च	४०
तीर्थानि देवा मुनयश्च सर्वे	४०
ततो न गावो बुधमाननीयाः	४०
तत्सूक्ष्मदूरान्तरिताः पदार्थाः	४४
तस्यैव यत्सम्भवतीह तथ्यः	४५
अस्मिन्निदानीमिव सार्वभौमे	५१
तस्यैव वाक्यं भवति प्रमाणम्	५५
तस्याङ्गिनां मातुरिवौरसानाम्	५६
तत्रैव सूक्तं पुरुषादितत्त्वम्	५७
तत्रात्मतत्त्वं सहजोपयोगि	५७
तद्देवमूढं यदिहाञ्चतीति	६७
त्रीण्यप्रशस्तेक्षणबोधवृत्ता-	६८
तेनावगम्य श्रतमोहहानौ	७६
ते पात्रदानानि जिनेन्द्रपूजाः	८३
त एव मान्या भुवि धार्मिकौघाः	८४
द	
दिव्यत्तपोविघ्नकृते समेताम्	१४
दुर्वर्तनारातिवरप्रदानात्	२५
दिशेन च स्थावरजातघातः	३१
दानादिना स्थावरजातघातम्	३१
द्विजातिभूद्भूय मखैरमीषु	३२
देवागमादीनि समीक्ष्य मत्वा	४१
देवद्रुमो वा जिन एव दत्ते	४९
द्रव्येषु सत्स्वप्यखिलस्य जन्तोः	५०
द्रव्याणि षड् जैनमतेऽग तेऽमी	६०
देवाधिदेवो जिन एव देवः	६६
देशेषु कालेषु कुलेषु सर्वे-	७९
ध	
धर्मो झषस्येव जलं गतौ स्यात्	५९
धातातिरागीव पुरोहितः सन्	२३
न	
निरस्य लज्जां निखिलाङ्गभूषाम्	११
निजाननेनोदरमेत्य विश्वम्	१७
नात्मास्ति जन्मास्ति पुनर्न कर्ता	२३
नश्यन्ति नागा नकुलस्य नादैः	३९
निरीक्ष्य गोपालघटोत्थधूमम्	४३
निराकृतान्तस्तमसो निषेव्याः	८२
प	
पतिर्न सल्लापमपि प्रयुङ्क्ते	६
प्रयाति रागात्प्रमथेट् परस्त्रीः	७
पुरारिरासीत्त्रिपुराणि पूर्णा-	९
प्रियावियोगेऽ यमगात्पिनाकी	११

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्लोकः	पृष्ठसंख्या
प्रियोक्तिपीयूषरसैः प्रणामैः	१६
प्रासादहेमाण्डकसेवकादीन्	२५
प्रञ्चापि सनैकहृषीकजीवाः	३०
पिष्टादितो जातमपीह भोज्यात्	३२
प्रयोऽस्ति पेयं पलमस्त्यभोज्यम्	३४
प्राणी कथञ्चित्परिदृष्टरक्त-	३८
पाखण्डिमूढं भवकारणं स्यात्	६७
पुण्यैकवश्योऽभ्युदयोऽत्र जन्तोः	६९
भ	
भजन्त्यभिज्ञा जिनमेव भक्त्या	४७
भव्या भवाम्भोनिधिपारगं	५०
भिन्ना मणीराशिवदेव लोका-	६०
म	
मान्यः स किंवा भुवि वीर-	१२
मनोजमद्याशनमांसलाभे	२४
मांसं भवेत्प्राणितनुस्तथैव	३३
मान्यैर्महाश्रीरपि मातरोऽपि	३९
मान्यान्यथेमान्यपि ये वदन्ति	४१
मिथ्यात्वधर्मप्रभवादतत्त्व-	४९
मुक्तोऽष्टभिः कर्मभिरष्टभिः स्वैः	५३
मनस्तमः स्वार्थविभासितेजाः	५४
मत्या श्रुतेनावधिना च तेन	७६
महार्थदायीदमणुव्रतं च	७६
मोक्षप्रदैर्मूलगुणैश्च सर्वैः	८१

श्लोकः	पृष्ठसंख्या
य	
येनात्मभावेन स कर्मयोग्यः	६१
येनास्रवः साधु निरुध्यतेऽङ्गि-	६१
यशांसि लाभाननपेक्ष्य पूजाः	७०
ये श्वभ्रतिर्यङ्मनुजामरायु-	७३
र	
रागादयो यस्य न सन्ति दोषाः	५
रोषादुदग्रः कलुषः स शापान्	९
रामो न पूज्यो यदबोधि नैष	२२
रागादगच्छत्सुगतोऽन्त्यजाम-	२२
राहुर्मुहुः पीडितराजमित्रः	३८
रत्नत्रयात्मा सुचिराय धर्मः	७८
ल	
लोकोन्नतोऽप्यर्थितया बबन्ध	२१
लोकं तपन्नुद्धतदन्तपङ्क्तिः	३६
लोकेऽञ्जनोऽनन्तमतिः प्रसिद्धि	७१
व	
विभिन्नकुक्षिं च विभग्नदन्तं	११
विबुध्य शत्रून्विकृते निहन्तुम्	१८
वेदत्रयैस्तैर्विहितापि हिंसा	३१
वाण्येव जैनी मणिदीपिकेव	५६
विशुद्धरत्नत्रयपूर्णसेवा	७५
विशुद्धवृत्ते सति सम्यगेव	७७
वने मृतोऽन्धोऽपि चरञ्जवेन	७८

For Private And Personal Use Only

श्लोकः	पृष्ठसंख्या
श	
श्रीमाञ्जिनो मे श्रियमेष दिश्यात्	१
श्रीगौतमाद्या जिनयोगिनो ये	३
शम्भुर्ददौ तुम्बरुनारदाभ्याम्	७
शंभुः स मोहान्निजभक्तचित्तम्	१०
शिरोऽक्षिजिह्वाकरदेहजात-	१०
शिवाय शापं विततार कोपात्	१४
शिवोत्तमाङ्गेऽपि पितामहस्य	२०
शिवा भवन्तीह मृताङ्गिसत्वाः	३३
शुक्रार्तवोत्थं खलु धातुयापम्	३३
शिवादिकेभ्यो जिन एव मान्यः	४७
श्रित्वादिमं तापमतेष्वबुद्धा-	५१
श्रीमान्स्वयम्भूर्वृषभो जितात्मा	५२
शास्त्रं हितं शास्ति भवाम्बुराशेः	५७
श्रद्धानमस्यैव दुरापमुक्तम्	६३
शङ्का च काङ्क्षा विचिकित्सयामा	६८
स	
सदापि सिद्धो मयि संनिदध्यात्	१
सर्वोऽप्यदुःखं सुखमिच्छतीह	३
स्वद्रव्यकालक्षितिभावतोऽस्ति	४
सा जाह्नवी शङ्करधर्मपत्नी	११
स्रष्टुः स्वसृष्टेषु जगत्स्वदृष्टे-	१४
समेत्य रागात्पुरुषोत्तमोऽपि	१६

श्लोकः	पृष्ठसंख्या
सदा वनरालीषु सरोवरेषु	१६
सुरारिवक्षस्स्थलवज्रशङ्कुः	१६
स्थितं जगत्तज्जठरे समस्तम्	१९
सर्वं जगद्विष्णुमयं वदन्तः	१९
स स्यान्नृसिंहोऽपि सतामसेव्यः	२०
सर्वत्र सत्यामपि दृष्टपूर्वे	२४
सिताम्बराः सिद्धिपथच्युतास्ते	२८
स्वप्नेऽपि रुच्याः सुधियां न वेदाः	३०
सदाप्यहिंसा जनितोऽस्ति धर्मः	३०
सुराः सुधां स्वःसुलभां शुचिं च	३१
स्पृष्टे कथञ्चित्क्षतजे च मांसे	३२
सर्वेऽपि विप्राः पितृलोकगाश्च	३२
सितांशुसूरौ जनितौ कदाचित्	३७
सितांशुसूरग्रहणे जगत्यां	३७
सर्वत्र सर्वेऽप्यथवा वसन्तु	४०
सन्मार्गसन्दर्शि वचोऽस्ति नाम्ना	४३
संसारदुःखातपतप्यमान-	४६
संसारितासूचकरागरोष-	४६
सुधांशुबिम्बे तमसेव शुद्धे	४८
सिंहासनं यत्र सितातपत्रं	४८
संसारकक्षे बहुदुःखदावे	४९
सतो हितं शास्ति स एव देवः	५२
स्वर्गावतारं जननाभिषेकम्-	५३
स्थितःस राजत्तललोकहर्म्य-	५४

श्लोकः	पृष्ठसंख्या
समस्तकृत्स्नकर्मक्षयहेतुरात्म-	६२
स्याल्लोकमूर्द्ध सिकताश्मराशिः	६७
सम्भावयन्प्रतिमैस्तबोधी-	६७
सुखावहं तत्सुदृशोक्रमाद्यम्	६८
स्वभावतोऽत्यन्तविशुद्धिभाजो	७०
सम्यक्त्वमङ्गैः सकलैः समग्रैः	७१
स्त्रीवेदनीचैःकुलतिर्यगायु-	७२
सम्यक्त्वसम्राजमुदारमेनम्	७३
सज्जातिगार्हस्थ्यतपोधनत्वं	७४
सज्जातिरत्राशुभशिल्पविद्या-	७४
सद्दर्शनाचारवदान्यतार्य-	७४
सदापि संन्यस्तसमस्तसंगा	७४
स्वाराज्यमेतत्सुचिरं सभायां	७५
सज्ज्ञानमत्र क्षतभाविकर्म	७८
सम्यञ्चि दृग्धीश्चरितान्यमूनि	७८
संन्यस्य संगं सकलं विरक्त्या	८०
सम्यक्त्वबोधाचरणानि शस्ता-	८१
सूक्त्यैव तेषां भवभीरवो ये	८२
ह	
हरो मुहुः संहरति स्म लोकान्	१

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भव्यजनकण्ठाभरणम् ।

श्रीमाञ्जिनो मे श्रियमेष दिश्याद्यदीयरत्नोज्ज्वलपादपीठम् ।
करैर्नतेन्द्रोत्करमौलिरत्नैः स्वपक्षरागादिव चालितं स्वैः ॥ १ ॥

अर्थ–वे भगवान् जिनेन्द्र देव मुझे लक्ष्मी प्रदान करें, जिनका रत्नोंसे उज्ज्वल पादपीठ (चरणोंके रखनेका आसन) नमस्कार करते हुए इन्द्रोंके समूहके मुकुटोंमें लगे हुए रत्नोंके द्वारा, मानों अपने पक्षके रागवश ही, अपने करों अर्थात् किरणोंसे लालित हुआ। अर्थात् जिनके चरणोंको इन्द्र नमस्कार करते हैं वे भगवान् मुझे लक्ष्मी प्रदान करें ॥१॥

सदापि सिद्धो मयि संनिदध्यात्स सिद्धवध्वा सह सान्द्रसौख्यम् ।
चर्वत्यजस्रं तनुमारुतान्तः संभोगभाविश्रमभीतवद्यः ॥ २ ॥

अर्थ – वे सिद्धपरमेष्ठी सदा मेरे अन्तःकरणमें निवास करें, जो संभोगमें होनेवाले श्रमसे डरे हुए की तरह लोकके ऊपर तनुवातवलयके अन्तमें सिद्धिरूपी वधूके साथ निरन्तर सुखोपभोग करते हैं ॥२॥

आचार्यवर्याश्चरितानि शिष्यानाचारयन्तः स्वयमाचरन्तः ।
षट्त्रिंशतापि स्वगुणैर्युतास्तैः सदा परात्माष्टगुणाभिलाषाः ॥ ३ ॥

अर्थ – जो उत्तम चारित्रका (ज्ञानाचार, दर्शनाचारादिक पांच आचारोंका स्वयं) आचरण करते हैं और शिष्यों से आचरण

१ ल. लालितं ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कराते हैं, तथा अपने (आचार्य के) छत्तीस गुणों से युक्त होते हुए भी सदा सिद्ध परमेष्ठीके सम्यक्त्व आदि आठ गुणोंको प्राप्त करने की अभिलाषा रखते हैं, वे आचार्य परमेष्ठी मेरे हृदयमें निवास करें ॥३॥

तेऽध्यापकाः स्युर्दधते नितान्तं ये ब्रह्मचर्यव्रतपालिनोऽपि ।
दयां च चित्तेषु सरस्वतीं च, मुखेषु देहेषु तपःश्रियं च ॥ ४ ॥

अर्थ – जो ब्रह्मचर्य–व्रतका पालन करते हुए भी अपने चित्तमें दयाको, मुखमें सरस्वतीको और शरीरमें तपरूपी लक्ष्मीको धारण करते हैं वे उपाध्याय परमेष्ठी जयवन्त रहे ॥४॥

ते साधवो मे ददतु स्ववृत्तिं दयालवोऽपि व्रतदिव्यशस्त्रैः ।
अनङ्गराजं समरे निहत्य कुर्वन्त्यनङ्गोरुपदं स्वकीयम् ॥ ५ ॥

अर्थ – जो दयालु होते हुए भी युद्धमें व्रतरूपी दिव्य शास्त्रोंके द्वारा कामदेवको मारकर, अपने विशाल अशरीरी पद (मोक्ष) को प्राप्त करते हैं वे साधु परमेष्ठी मुझे अपनी वृत्ति (भ्रामरीवृत्ति) प्रदान करें ॥५॥

जिनागमक्षीरनिधिर्गभीरो विलोडितश्चेद्विबुधैर्विधानात् ।
ददाति रत्नत्रयमुज्ज्वलाङ्गं तदा स तेभ्योऽप्यमृतं दुरापम् ॥ ६ ॥

अर्थ – जैन आगम–रूपी क्षीरसमुद्र बड़ा गहरा है । यदि पण्डितजन विधिपूर्वक उसका मंथन करें तो वह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र–रूप निर्मल रत्नत्रयको देता है और उस रत्नत्रयसे भी अत्यन्त कष्टसे प्राप्त करने योग्य अमृत [निर्वाण] पद प्रदान करता है ॥६॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्रीगौतमाद्या जिनयोगिनो ये वीराङ्गजान्ता विमलात्मवृत्ताः ।
तदीयनामाक्षररत्नमाला मदीयवाण्या मणिकण्ठिका स्यात् ॥ ७ ॥

अर्थ – महावीर भगवान्के तीर्थमें होनेवाले श्रीगौतम गणधर आदि, तथा अन्तमें होनेवाले वीराङ्गज जो जैन योगी हैं, जिनकी आत्मपरिणति अर्थात् चारित्र अत्यन्त निर्मल है, उनके नामाक्षररूपी रत्नोंकी माला मेरी वाणीके कण्ठको भूषित करे ॥७॥

अथाशरीरानुपमाम्बुजाक्षीमप्याशु वश्यां यदलं विधातुम् ।
शस्तं सुवर्णाभिनवार्थरत्नैस्तद्भव्यकण्ठाभरणं तनिष्ये ॥ ८ ॥

अर्थ – इसके अनन्तर, जो अशरीर और अनुपम कमलके समान जिसके नेत्र हैं ऐसी सरस्वतीको भी शीघ्र वश करनेमें समर्थ है तथा जो सुवर्ण– अच्छे अच्छे अक्षर और नवीन अर्थरूपी रत्नोंसे शोभित है, उस भव्यकण्ठाभरण – भव्य जीवोंके कण्ठके लिये भूषण रूप– ग्रन्थकी रचना करता हूं ॥८॥

सर्वोऽप्यदुःखं सुखमिच्छतीह तत्कर्मनाशात्स च सच्चरित्रात् ।
सज्ज्ञानतस्तत्सुदृशस्तदाप्ताद्यास्थैव सा मे तदमुष्य वाच्याः ॥ ९ ॥

अर्थ – इस लोक में सब जीव दुःखरहित सुखको चाहते हैं। और दुःखरहित सुख कर्मोंके नाशसे प्राप्त होता है। कर्मोंका नाश सम्यक्चारित्रसे होता है। वह सम्यक्चारित्र सम्यग्ज्ञानसे होता है। सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शनसे होता है। सम्यग्दर्शन आप्तसे होता है और सम्यक्चारित्रसे होता है। तथा सम्यग्ज्ञान और सम्यक्-चारित्रकी प्राप्ति सम्यग्दर्शनसे होती है। श्रद्धा करनेको सम्यग्दर्शन कहते हैं। अतः उनका स्वरूप कहता हूं ॥९॥

कश्चित्पुमानाप्तगिरोऽस्ति वाच्यो वाच्यं विना यद्भुवि वाचकं न ।
सवाच्यमभ्रेऽम्बुरुहं च तत्स्यात्तत्रासदप्यस्ति सरस्यधो यत् ॥१०॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ – कोई मनुष्य आप्त है; क्यों कि संसारमें वाच्यके विना वाचक नहीं पाया जाता। अर्थात् जितने अखण्ड पद हैं उन पदोंका वाच्यभी अवश्य पाया जाता है। जैसे कोई कहे कि 'आकाश में कमल' है। तो आकाश में यद्यपि कमल नहीं है परन्तु तालाब में तो कमल है ॥१०॥

स्वद्रव्यकालक्षितिभावतोऽस्ति, नास्त्यन्यतः सर्वमिति प्रसिद्धम्।
यथा घटः स्याद्भुवनेऽस्ति नास्ति, न चेदिदं तेन भृतं च शून्यम् ॥११॥

अर्थ – प्रत्येक वस्तु स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभावसे है और परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और परभावसे नहीं है। जैसे घट है भी और नहीं भी। यदि ऐसा नहीं माना जायेगा तो उसका अभाव हो जायेगा।

भावार्थ – न कोई वस्तु केवल सत् ही है और न कोई वस्तु केवल असत् ही है। यदि प्रत्येक वस्तुको केवल सत्स्वरूप ही माना जायेगा तो सब वस्तुओंके सर्वथा सत्स्वरूप होनेसे उन वस्तुओंके बीचमें जो अन्तर पाया जाता है उसका लोप हो जायगा। और उसका लोप हो जानेसे सब वस्तुएँ सब रूप हो जायेंगी। उदाहरण के लिये घट भी वस्तु है और पट भी वस्तु है। किन्तु जब हम किसीसे घट लानेको कहते हैं तो वह घट ही लाता है, पट नहीं लाता। और जब पट लाने को कहते हैं तो वह पट ही लाता है, घट नहीं लाता। इससे साबित है कि घट घट ही है, पट नहीं है, और पट पट ही है घट नहीं है। अतः दोनोंका अस्तित्व

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अपनी अपनी मर्यादामें ही सीमित है, उसके बाहर नहीं। अतः प्रत्येक वस्तु अपनी मर्यादा में है, उसके बाहर नहीं। यदि वस्तुएँ इस मर्यादा का उल्लंघन कर जाये तो फिर सभी वस्तुएँ सब रूप हो जायेंगी और इसतरह बड़ी गड़बड़ फैल जायेगी। अतः प्रत्येक वस्तु स्वरूपकी अपेक्षा सत् और पररूपकी अपेक्षा असत् है ॥ ११ ॥

किं चैष नास्तीत्यखिलेऽपि देशे काले च बुद्ध्वैव यदि त्वमात्थ ।
अयं त्वमेवाखिलविन्न बुद्ध्वास्यवित्त्वमस्त्येव समस्तवित् सः ॥१२

अर्थ – अतः कोई पुरुष आप्त अवश्य है। शायद आप कहें कि किसीभी देशमें और किसीभी कालमें कोई पुरुष आप्त नहीं हुआ, न है, और न होगा। तो आप यदि सब देशों और सब कालोंको जानकर ऐसा कहते हैं तो आपही सर्वज्ञ आप्त ठहरते हैं। और यदि बिना जानेही कहते हैं तो आपका कथन प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। अतः सबको जाननेवाला कोई आप्तपुरुष अवश्य है॥ १२

तदाप्तरत्नं सकलार्थसिद्धेर्निदानभूतं नितरां दुरापम् ।
लोके तदाभाससहस्रपूर्णे सम्यक् परीक्ष्यैव भजन्तु सन्तः ॥१३॥

अर्थ – वह आप्तरूपी रत्न समस्त अर्थोंकी सिद्धिका मूलकारण है किन्तु उसकी प्राप्ति अत्यन्त कठिन है। क्यों कि यह संसार हजारों बनावटी आप्तोंसे भरा पड़ा है। अतः सज्जन पुरुष आप्तकी परीक्षा करकेही उसको अपनावें ॥ १३ ॥

रागादयो यस्य न सन्ति दोषाः सर्वज्ञताद्युद्घगुणास्तु सन्ति ।
आप्तः स एवास्त्यपरे न सर्वेऽप्यमी समा यद्ध्रुवमस्मदाद्यैः ॥ १४

अर्थ – जिसको रागादि दोष नहीं है और सर्वज्ञता आदि श्रेष्ठ गुण पाये जाते हैं वही आप्त है, बाकीके सब आप्त नहीं हैं। वे तो

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

निश्चयसे हम लोगोंकेही समान हैं ॥१४॥

इत्युक्तिमाकर्ण्य शिवादयोऽपि दोषैर्विमुक्ता निचिता गुणैस्तैः ।
ये पक्षपातादिति वर्णयन्ति समुच्यते तान्प्रति तत्स्वरूपम् ॥१५॥

अर्थ – उक्त कथन को सुनकर जो पक्षपातवश ऐसा कहते हैं कि, शिवजी वगैरह देवता भी दोषोंसे रहित हैं और गुणोंसे पूर्ण हैं। उनके लिये उन देवताओंका स्वरूप कहा जाता है ॥१५॥

वित्तं सुदत्यै वितरत्यशेषं [1]विदोऽप्यतः कैश्यमथाङ्गुलिं वा ।
विरूपदृष्टिस्तु विशालदृष्ट्यै विरुद्धरागाद्वितितार देहम् ॥१६॥

अर्थ – कोई धूर्त (व्यभिचारी पुरुष) अपनी प्रिया को सब धन देता है अथवा केशोंका आभूषण वा अंगूठी देता है। परंतु जिनका नेत्र कुरूप है ऐसे शिवजीने जिसकी आँखें विशाल–बडी हैं ऐसी पार्वतीको लोक-विलक्षण-प्रीतिसे अपना देह (आधा देह) दे डाला अर्थात् वे अर्धनारीश्वर बन गये।

पतिर्न सल्लापमपि प्रयुङ्क्ते पत्न्या सहैकान्तपदं विहाय ।
परं पुनः किं [2]परिपुष्टरागो भागीरथीमग्नतनुर्भवोऽभूत् ॥१७॥

अर्थ – पति एकान्त स्थानको छोडकर अन्यत्र अपनी पत्नी के साथ बातचीत भी नहीं करता। किन्तु आश्चर्य है कि शिव तीव्र राग के वश होकर गंगामें मग्न हो गये।

भावार्थ – ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि जिस समय शिवजीकी प्रिय पत्नी पार्वती हुई उसी समय गंगा भी उन्हें प्रिय हुई। शिवजीके रसिक और स्त्रैण होनेसे गंगा उन्हें विशेष प्रिय होगई और वह सदा उसीके ध्यानमें रहने लगे। उसे उन्होनें अपनी जटाओंमें

१ ल. विटोऽप्यतः २ ल. परिपुष्टरागात्.

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

छिपाकर रक्खा। पार्वतीको यह बात सह्य नहीं हुई। तब उसने गणेश आदिसे कहकर गंगाको वहांसे हटानेका षड़्यंत्र रचा और उसके फलस्वरूप गंगा शिवजीकी जटासे निकलकर स्वर्गलोक और मर्त्यलोकमें अवतरित हुई ॥१७॥

प्रयाति रागात्प्रमथेट्परस्त्रीः प्राश्नाति मांसं प्रपिबत्यपेयम् ।
धत्तेऽस्थिमालाऽजिनशावरक्षास्तनोति भिक्षाटनताण्डवानि ॥१८॥

अर्थ – रागके वशीभूत होकर शिव परस्त्रीके पास जाता है, मांस खाता है, न पीने योग्य वस्तुओंको पीता है, गलेमें मुण्डमाला पहेनता है, गजासुरका चर्म परिधान करता है, शरीरमें श्मशानके मुर्दोंकी राख मलता है, भिक्षा मांगता है और ताण्डव नृत्य करता है ॥

शम्भुर्ददौ तुम्बरुनारदाभ्यां गीताय रागाद्गृहमात्मकर्णम् ।
पार्थेन सार्धं विततान युद्धं शक्ताय[1] दूतोऽजनि वारवध्वाः ॥१९॥

अर्थ – वह संगीत सुननेका इतना प्रेमी है कि नारद और तुम्बरुको उसने अपने कान दे दिये थे। अर्जुनके साथ उसने युद्ध किया और अपने एक भक्तके लिए वेश्याका दूत बना।

भावार्थ – शिवपुराणमें लिखा है कि अर्जुन शिवकी आराधना करनेके लिए वनमें तपस्या कर रहे थे। दुर्योधनने एक दैत्यको शूकरका रूप धारण कराके अर्जुनके मारनेके लिए भेजा। अर्जुनकी रक्षाके लिए शिवजीने भीलका वेष धारण करके शूकरपर बाण छोड़ा, उसी समय अर्जुननेभी बाण चलाया। दोनों बाण एक साथ शूकरके लगे और वह मर गया। अब अर्जुन और भीलवेशधारी शंकरमें झगड़ा होने लगा। दोनों कहते थे कि मेरे बाणसे शूकर मरा है। इसपर

१ ल. भक्ताय.

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दोनोंमें युद्ध हुआ। अन्तमें प्रसन्न होकर शंकरने अर्जुनको वरदान दिया।

हरो मुहुः संहरति स्म लोकाननङ्गदेहं दहति स्म रोषात्।
अहो छिनत्ति स्म शिरो विरिञ्चेरपीडयद्रावणमङ्गुलेन ॥ २० ॥

अर्थ — शिव वार वार सृष्टिका संहार करता है, रोषमें आकर उसने कामदेवके शरीर को भस्म कर दिया था, ब्रह्माका सिर काट डाला था और अंगूठेसे रावणको पीड़ा पहूंचाई थी।

भावार्थ — पुराणोंमें शिवको जगत् का विनाश करनेवाला माना है। शिवपुराणमें लिखा है— तारकासुरसे भयभीत होकर देवोंने ब्रह्मासे प्रार्थना की। ब्रह्माने कहा कि शिवजी के पुत्र उत्पन्न हो तो वह तारकासुर को मार सकेगा। अतः ऐसा प्रयत्न करना चाहिये जिससे शिवजी पार्वतीपर आसक्त हों। तब इन्द्रने कामको बुलाकर उसे यह भार सौंपा और काम शिवको जीतनेकी प्रतिज्ञा करके उनके निकट गया। उसने जाकर अपने अमोघ बाणोंसे शिवजीके मनको चंचल कर दिया। मनकी चंचलताका कारण जानकर शिवजी एकदम क्रुद्ध होगये और तीसरे नेत्रसे निकलती हुई ज्वालाने कामदेवको जलाकर भस्म कर दिया। एक बार ब्रह्मा और विष्णुमें भयंकर युद्ध हुआ। तब महादेव बीच बचाव करने के लिये पहुंचे। उन्होंने उन दोनों के बीच में एक अग्निमय स्तम्भ प्रकट किया। उसे देखकर ब्रह्मा और विष्णु दोनों चकित हुए और उसका आदि–अन्त जाननेके लिय चल पड़े। विष्णु शूकरका रूप धारण करके नीचे की ओर गये और ब्रह्मा हंसका रूप धारण करके ऊपरकी ओर। लौटकर ब्रह्माने झूंठ मूठ कह दिया कि मैं इस स्तम्भका

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अन्त देख आया। तब महादेव ने अपनी भृकुटीसे भैरवको उत्पन्न किया और उसे आदेश दिया कि ब्रह्माजी को तलवार से पूजा कर। भैरवने हाथ से ब्रह्माके केश पकड कर उनके असत्य भाषण करनेवाले पञ्चम मस्तकको काट डाला ॥ २० ॥

रोषादुदग्रः कलुषः स शापानुग्रो ददात्युग्रतरान्परेभ्यः।
क्रीडन्सुकेश्या लपनेऽपि रेतोऽक्षिपत्तदायातकपोटयोनेः ॥ २१ ॥

अर्थ-- रोषमें आकर शिवजी किसीको भयानक शाप देते हैं तो दूसरेको उससे भी भयानक शाप दे डालते हैं। एक बार पार्वतीके साथ सम्भोग करते हुए शिवने उसी समय आये हुवे अग्निदेवके मुखमें वीर्यपात कर दिया था।

भावार्थ-- शिवपुराण में लिखा है कि जब शिवजीको पार्वतीके साथ भोग करते हुए हजार वर्ष बीत गये, और कोई सन्तान नहीं हुई तब सब देवता घबराये हुए कैलास पर्वतपर पहुंचे और शिवकी स्तुति करने लगे। शिवजी ने बाहर आकर कहा कि 'मेरे स्खलित हुए वीर्यको कौन धारण करेगा? जो ग्रहण करना चाहे वह ग्रहण करो' ऐसा कह कर उन्होंने अपने वीर्य को पृथ्वीपर गिरा दिया। तब सब देवताओंकी प्रेरणासे अग्निने कबूतरका रूप धारण करके अपनी चोंचसे उस वीर्यको पीलिया ॥ २१ ॥

पुरारिरासीत्त्रिपुराणि पूर्णान्यगण्यसत्त्वैरदयो विदाह्य।
स कृत्तिवासाःसमभूत्सकोपः शिवः समुत्पाट्य गजाजिनं च ॥ २२ ॥

अर्थ-- दैत्योंके तीन नगरों को, जो असंख्य प्राणियोंसे भरे हुए थे, निर्दयतापूर्वक जलाकर शिव 'पुरारि' कहलाये। और क्रुद्ध होकर गजासुरको मारकर उसका चमडा लेकर 'कृत्तिवास' कहलाये॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भावार्थ– शिवपुराणमें लिखा है कि तारकासुरके तीन पुत्रोंने ब्रह्मासे वरदान प्राप्त करके तीन नगर बसाये थे। और उनमें निर्भय होकर रहते हुए वे असुर सब को कष्ट देते थे। तब देवोंकी प्रार्थनापर शिवजीने अपने बाणसे उनके तीनों नगरोंको भस्म कर डाला था। तथा एक गजासुर था वह भी बड़ा त्रास देता था। देवोंकी प्रार्थना पर शिवने उसे अपने त्रिशूल से मारा। तब उसने शिवजीसे प्रार्थना की यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मेरी जो खाल आपके त्रिशूलसे पवित्र होगई है उसे आप सदा धारण करें और आजसे आपका नाम 'कृत्ति-वास' प्रसिद्ध हो। शिवजीने इसे स्वीकार किया ॥ २२ ॥

शम्भुः स मोहान्निजभक्तचित्तं चकार वेत्तुं शतधाप्युपायान्।
दुरात्मनां दुष्टवरानदत्त स्ववत्परेषामपि दुःखहेतून् ॥ २३ ॥

अर्थ– शिव मोहवश अपने भक्तोंके मनकी बात जाननेके लिये सैकडों उपाय करता था। और दुष्ट लोगोंको भी दुष्ट वर दे डालता था। जो उसकी ही तरह दूसरों के लिये भी दुःख दायक होते थे ॥२३॥

शिरोऽक्षिजिह्वाकरदेहजातच्छेदादिभिः सेवकचित्तवृत्तिम्।
विज्ञाय तेभ्यस्तु वरानभीष्टान्विरूढ[1]मोहाद्विततार शर्वः ॥२४॥

अर्थ– सिर, आंख, जीभ, हाथ और शरीर के छेदन वगैरेसे अपने सेवकोंके चित्तकी वृत्तिको जानकर, बढे हुए मोहके कारण शिव उनको इच्छित वर दिया करता है ॥ २४ ॥

अजाद्भवो भाविनमात्मशापमहो न मोहातिशयादबोधि।
अतस्तमेवैत्य तदुक्तिहेतुमयं पुनः कातरधीरपृच्छत् ॥ २५ ॥

अर्थ– ब्रह्माने उसे जो शाप दिया था, मोहकी अधिकता के कारण

१ ल. विवृद्धमोहाद

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शिव उसे नहीं जान सका, और उसीके पास आकर कातरबुद्धि उसेही उसने उसका उपाय पूछा ॥ २५ ॥

प्रियावियोगेऽयमगात्पिनाकी प्रकम्पधर्मारुचिभीतिखेदान् ।
स शोकचिन्ताऽज्वरदाहमूर्च्छास्तत्सङ्गमे विस्मयगर्वनिद्राः ॥ २६ ॥

अर्थ– जब शिवकी प्रिया पार्वतीका उससे वियोग होगया तो वह कांप उठा और अरुचि, भय, खेद, शोक, चिन्ता, ज्वर, दाह और मूर्छाने उसे घेर लिया। और जब उसका उससे मिलन होगया तो विस्मय, गर्व और निद्राने उसे घेर लिया ॥ २६ ॥

निरस्य लज्जां निखिलाङ्गभूषां नीतिं च भीतिं च नितान्तशक्तिम् ।
निशान्तमीशाङ्गमुमाकलय्य निन्द्यं किमेनं नितरां तनोति ॥ २७ ॥

अर्थ– लज्जाको, समस्त अंगके भूषणोंको, नीतिको और भयको दूरकर; महादेवके अंगको-लिंगको सामर्थ्यशाली जानकर; निशान्त-प्रभातकालमें उसके साथ क्रीडा कर पार्वती उसे क्यों अतिशय निन्द्य करती है? ॥ २७ ॥

सा जाह्नवी शङ्करधर्मपत्नी सक्ता चिरं शन्तनुना विहृत्य।
समर्प्य भीष्मादिसुतांश्च तस्मै ततःपतिं तं किमिता न साध्वी॥२८॥

अर्थ– शंकरकी धर्मपत्नी वह गंगा चिरकालतक राजा शान्तनुमें आसक्त रही। और उसके साथ विहार करके तथा उसे भीष्म आदि अनेक पुत्र प्रदान करके पुनः अपने उस पति शिवके पास वह साध्वी क्या नहीं लौट आई? ॥ २८ ॥

विभिन्नकुक्षिं च विभग्नदन्तं विनायकः स्वं विनुतं विधातुम् ।
अशक्नुवानोऽपि वरानभीष्टानापादयत्यद्भुतमाश्रितेभ्यः ॥ २९ ॥

अर्थ– अपने फटे हुए पेट और टूटे हुए दांतको ठीक करनेमें असमर्थ होते हुएभी गणेशजी अपने आश्रित भक्तोंको इच्छित वर देते

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हैं यह अति आश्चर्यकी बात है।

भावार्थ– लड़ाईमें गणेशजी बहुत घायल होगये थे। उनके पिता शिवने उनका मस्तक तक काट डाला था। पीछे पार्वतीके क्रुद्ध होनेपर हाथीका मस्तक जोड़कर गणेशको शिवजीने जीवित किया था। रावणने उसका एक दांत तोड दिया था अतः उसे एक-दन्त कहते हैं ॥ २९ ॥

उवाह रागोदयतः पुलिन्दीमुतावधीत्तारकमुग्ररोषात्।
स मोहलीलासदनावतारः षाण्मातुरः किन्नु सतामुपास्यः ॥ ३० ॥

अर्थ– जिसने रागके वशीभूत होकर भीलनीके साथ विवाह किया और अत्यंत क्रुद्ध होकर तारक राक्षसका वध किया, मोहकी क्रीडाभवनके अवतार रूप वह कार्तिकेय सज्जनोंके उपास्य [आराध्य] कैसे हो सकता है।

भावार्थ– यह कार्तिकेय शिवके पुत्र थे। शिवपुराणमें इसकी उत्पत्तिकी बड़ी विचित्र कथा दी हुई है। उसका संक्षेप इसप्रकार– मुहमें धारण किया हुआ वीर्य अग्निदेवको असह्य होनेसे उसने गंगा-नदीमें गमन किया। उस समय छह कृत्तिकायें जलक्रीडा कर रही थी। उनके पेटमें उस वीर्यने प्रवेश किया तब उसके असह्य दाहसे वे तटपर आकर लोटने लगी, उसी समय उनसे कार्तिकेयका जन्म हुआ। छह कृत्तिका माताओंसे उसका जन्म होनेसे उसे षाण्मातुर कहते हैं। ॥ ३० ॥

मान्यः स किं वा भुवि वीरभद्रो मखे[1] स्वमातामहमस्तकस्य।
छेत्ता शुचिः[2] पाणियुगस्य मित्रदन्तानशेषानुदपाटयद्यः ॥ ३१ ॥

अर्थ – जिसने यज्ञमें अपने नानाका मस्तक और अग्निदेवके

१ ल. मुखस्य मातामहमस्तकस्य। २ ल. शुचेः

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दोनों हाथोंको काट डाला तथा मित्रके–सूर्यके सम्पूर्ण दांत उखाड़ डाले, क्या वह वीरभद्र पृथ्वीपर पूज्य हो सकता है ?

भावार्थ – शिव-पुराणमें लिखा है कि एकबार राजा दक्षने यज्ञ किया किन्तु अपने जामाता शिवको आमंत्रित नहीं किया और न अपनी पुत्री सतीकोही बुलाया। सती अपने पति शिवसे आज्ञा लेकर विना बुलायेही अपने पिताके यज्ञमें जा पहुंची। किन्तु दक्षने उसका जराभी आदर नहीं किया और न शिवको यज्ञका भागही दिया। इससे सती बहुत कुपित हुई तब दक्षने सतीके सामनेही शिवकी निन्दा की। अपने पतिकी निन्दा सतीसे सह्य नहीं हुई और उसने अग्निमें जलकर प्राणत्याग किया। यह समाचार जब कैलासपर शिवजीको मिला तो उन्होंने क्रोधमें आकर अपनी एक जटा उखाड़-कर पत्थरपर दे मारी। उससे वीरभद्रकी उत्पत्ति हुई। वीरभद्रने दक्षके यज्ञमें जाकर बड़ा उत्पात मचाया। घनघोर युद्ध किया और दक्षको पकड़कर अपने दोनों हाथोंसे उसका सिर धड़से जुदा करके आगमें फेंक दिया ॥३१॥

अजः प्रियामात्ममुखान्तरालेऽप्यधत्त रागाच्चतुराननोऽभूत्।
चिराय तीव्रे तपसि स्थितोऽपि तिलोत्तमाविभ्रमदर्शनाय ॥३२॥

अर्थ – चिरकालसे तपस्यामें लीन होनेपरभी ब्रह्मा तिलो-त्तमाके विलासको देखनेके लिये रागवश चार मुखवाला होगया और अपनी प्यारीको अपने मुखके अन्दर भी रखा।

भावार्थ – एक बार ब्रह्माने कठोर तपस्या की। तब इन्द्रने उसकी तपस्या भंग करनेके लिये तिलोत्तमा नामकी अप्सराको भेजा। तिलोत्तमा अपने प्रयत्नमें सफल हुई और वह मुनिका ध्यान भंग

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

करके इधर उधर ललचाती हुई फिरने लगी। तब उसे देखनेके लिये ब्रह्माने चार दिशाओंमें चार मुख बना लिये, जब वह उसके मस्तकपर नृत्य करने लगी तो उपर देखनेके लिये उसने गधेका मुख उत्पन्न किया ॥३२॥

धातातिरागी तु पुरोहितःसन्शम्भोर्विवाहे सह शैलपुत्र्या।
अस्याः करस्पर्शसुखाद्द्रवन्द्रागयाघ्रिया हस्तगृहीतलिङ्गः ॥३३॥

अर्थ – ब्रह्माजी बड़े विलासी थे। जब शंकरजीका विवाह पार्वतीके साथ हुआ तो ब्रह्माजी पुरोहित थे। पार्वतीके हाथके स्पर्श सुखसे ब्रह्माजीका वीर्य स्खलित होगया और बेचारे लज्जावश अपने लिंगको हाथसे पकड़े हुए वहांसे भग दिये ॥३३॥

शिवाय शापं विततार कोपात्स्रष्टा जगत्कल्पकलाप्रणष्टम्।
सिसृक्षुषा(णा) सार्धमलं समृद्धं चिरादकार्षीद्धरिणा नियुद्धम् ॥३४॥

अर्थ – एकबार ब्रह्माने जगत्के विनाशकर्ता शिवको क्रुद्ध होकर शाप दिया और एकबार जगत्के रक्षक विष्णुके साथ चिरकालतक घोर युद्ध किया ॥३४॥

दिव्यत्तपोविघ्नकृते समेतां तिलोत्तमामात्मशिरःक्षतिं च।
जगन्ति विष्णोर्जठरे स्थितानि स्रष्टा प्रमोहात्प्रथमं न जज्ञे ॥३५॥

अर्थ – दिव्य तपमें विघ्न करनेके लिये आई हुई अप्सरा तिलोत्तमाको, शिवजीके द्वारा अपने पञ्चम मस्तकके काटे जानेको और तीनों लोक विष्णुके उदरमें स्थित हैं इस बातको ब्रह्मा मोहवश पहले नहीं जान सका ॥३५॥

स्रष्टुः स्वसृष्टेषु जगत्स्वदृष्टेष्वासन्विषादारतिभीतिखेदाः।
चिन्तानिदाघज्वरदाहमूर्च्छा दृष्टेषु निद्रा रतिविस्मयौ च ॥३६॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ – जबतक ब्रह्माने अपने रचे हुए संसारको नहीं देखा, उसे विषाद, अरति, भय, खेद, चिन्ता, पसेव, ज्वर, दाह और मूर्छाने सताया। और देखनेपर निद्रा, मोह और आश्चर्यने आ घेरा ॥३६॥

जाया विधेरस्तु सरस्वती सा ततः स्वयं चोद्घवरप्रदास्तु।
आराधकेभ्यस्तु ततो[1] विचित्रमसौ प्रपेदे न हितात्मतां सा[2] ॥ ३७ ॥

अर्थ–वह सरस्वती ब्रह्मा की पत्नी रहो और आराधन करनेवालोंको उत्तमोत्तम वर भी देनेवाली रहो, फिरभी वह आराधकोंका हित न करेगी।

भावार्थ - सरस्वती ब्रह्मदेवकी कन्या थी। पुनः उसकी पत्नी होकर उसने यदि अपना अकल्याण किया तो वह आराधकोंका कैसे हित करेगी ? ॥ ३७ ॥

कषायवेगैः कलुषीकृतात्मा कञ्जासनानन्दकराङ्गजातः।
कल्पान्तकालः कलहप्रियः कोऽन्नामारयत्तैरिव नारदोऽस्मिन् ॥ ३८ ॥

अर्थ– जिसका आत्मा कषायके वेगसे कलुषित है, जो ब्रह्माके अंगसे उत्पन्न हुआ है तथा कल्पकालके समान भयानक है, उस कलह प्रेमी नारदने ब्रह्मा विष्णु और महेशकी तरह इस जगतमें किसको नहीं मारा ? ॥ ३८ ॥

अनल्परागः श्रियमम्बुजाक्षस्त्यक्तत्रपो वक्षसि ही दधाति।
अलङ्कृताङ्गः सिचयैरमूल्यैर्माल्याङ्गरागैर्मणिभूषणैश्च ॥ ३९ ॥

अर्थ– बहुमूल्य मणिजड़ित भूषणोंसे, मालाओंसे और सुगन्धित द्रव्योंसे अपने शरीरको सुशोभित करनेवाला महारागी विष्णु लज्जा छोड़कर लक्ष्मीको अपने वक्षःस्थानमें रखता है ॥ ३९ ॥

१ ल. तथापि २ न दितात्मना सा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

समेत्य रागात्पुरुषोत्तमोऽपि स स्नानकाले समुपात्तवस्त्रः ।
अलं निपीड्यात्मनि रागभारमापाद्य गोपीरमणः समासीत् ॥ ४० ॥

अर्थ– विष्णुको पुरुषोत्तम--पुरुषोंमें उत्तम कहते हैं। किन्तु पुरुषोत्तमनेभी गोपिकाओंके स्नान करते समय जाकर और रागवश उनके वस्त्र उठाकर उन्हें बहुत पीडा पहुंचाई तथा अपनेमें रागके भारको उत्पन्न करके गोपिकाओंसे रमण किया ॥ ४० ॥

सदा वनालीषु सरोवरेषु सौधेषु दोलास्वपि बल्लवीभिः ।
तनोति लीलाः स हरिः सरागः शंखं च वेणुं च धमत्यमन्दम् ॥४१॥

अर्थ– तथा वह रागी विष्णु वनोंमें, सरोवरोंमें, महलोंमें और झूलाओंपर गोपिकाओंके साथ सदा लीला किया करता था। और बडे जोरसे बांसुरी तथा शंख बजाया करता था ॥ ४१ ॥

प्रियोक्तिपीयूषरसैः प्रणामैः प्रियप्रदानैः प्रणयप्ररुष्टाः ।
प्रियाः प्रसन्नाः प्रविधाय रागात्प्रकाममाश्लिष्य हरिः प्रभुङ्क्ते ॥४२॥

अर्थ – प्रणयकोपसे रुष्ट हुई प्रियाओंको प्रिय-वचनरूपी अमृतरससे, नमस्कारसे और प्यारी वस्तुओंके दानसे प्रसन्न करके वह विष्णु रागवश गाढ़ आलिंगन करके उन्हें भोगता था ॥ ४२ ॥

सुरारिवक्षस्स्थलवज्रशङ्कुर्मुरारिराच्छिन्नजरादिसन्धः ।
जघान रोषैः शिशुपालकंसौ मल्लोरगेन्द्रौ मधुकैटभौ च ॥ ४३ ॥

अर्थ-- दैत्योंके वक्षःस्थलको विदारण करनेवाले और जरासन्धको मारनेवाले उस विष्णुने क्रुद्ध होकर शिशुपाल, कंस, मल्ल, नाग, मधु और कैटभका वध किया ॥ ४३ ॥

आः कौरवान्पाण्डुसुतैरशेषानमारयत्किं न रुषात्मबन्धून् ।
सम्पाद्य शाठ्येन दिवापि सायं स सैन्धवं चाश्र धनञ्जयेन ॥ ४४॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ– हाय ! क्या उस विष्णुने रोषमें आकर पाण्डवोंके द्वारा अपनेही बन्धु कौरवोंका वध नहीं कराया। और धूर्ततासे दिनमेंही सन्ध्या करके अर्जुनके द्वारा सिन्धुराज जयद्रथका वध नहीं कराया ?

भावार्थ– महाभारतके समय जब कौरवों और पाण्डवोंका युद्ध हो रहा था तो कौरवपक्षके साथ महारथियोंने मिलकर चक्रव्यूहमें फंसे अर्जुनपुत्र अभिमन्युका वध किया था। उस समय व्यूहके द्वारका रक्षक सिन्धुराज जयद्रथ था। तब अर्जुनने वह प्रतिज्ञा की कि यदि कल शामतक जयद्रथको न मार सका तो जीवितही अग्निमें प्रवेश करूंगा। श्रीकृष्ण अर्जुनके सारथि थे। वह जानते थे कि इस प्रतिज्ञा की खबर पातेही जयद्रथ छिप जायेगा और शाम होनेतक बाहर नहीं निकलेगा। अतः उन्होंने अपने मित्र अर्जुनको बचानेके लिये योगमायाके द्वारा सूर्यपर आवरण डाल दिया, जिससे दिनमेंही सायंकाल हो गया। अर्जुनकी प्रतिज्ञा पूरी करनेका काल बीता जानकर जयद्रथ अर्जुनको चिढ़ाने आया। तत्कालही सूर्यका आवरण हटाया और अर्जुनने जयद्रथको मारकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी की ॥ ४४ ॥

निजाननेनोदरमेत्य विश्वं निःसारयन्तं निखिलं विरिञ्चिम् ।
ज्ञातुं स मोहान्न शशाक विष्णुर्ज्ञानेन हीनः पशुभिः समानः ॥४५॥

अर्थ– अपनेही मुखसे उदरमें प्रवेश करके समस्त विश्वको निकालनेवाले ब्रह्माको वह विष्णु मोहवश जानभी न सका। ठीकही है, ज्ञानसे हीन मनुष्य पशुओंके समान है ।

भावार्थ– समुद्रमें मग्न हुई पृथ्वीको ब्रह्मा इधर उधर देखने लगे तब अलसीके पेडकी शाखापर अपना कमण्डलु रखकर बैठे हुए अगस्त्य

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ऋषिने ब्रह्माको कहा कि मेरे कमण्डलुमें आपकी पृथ्वी है। तब उसकी टोटीसे ब्रह्मा अंदर जाकर देखने लगे तो वहां वटवृक्षके पत्र-पर विष्णु पेट फुलाकर सोये हुए दीख पडे। ब्रह्माने "मेरी पृथ्वीका रक्षण आपने किया यह अच्छा हुआ" ऐसा कहा और विष्णुके मुखसे उदरमें प्रवेश कर वहां अपनी पृथ्वी देख कर वह आनंदित हुआ तथा विष्णुके नाभिपंकजसे निकलते समय उसके बालाग्रसे अटक गया तब उसेही उसने कमल बनाया और उसमें ब्रह्माने निवास किया॥४५॥

विबुद्ध्य शत्रून्विकृते निहन्तुमधादविद्विष्णुरथावतारान्।
सुधोपयोगे सुरराजिभाजौ रवीन्दुतोऽबोधि च राहुकेतू ॥ ४६ ॥

अर्थ– उपद्रवोंके द्वारा शत्रुओंको जानकर उन्हें मारनेके लिये विष्णुने अनेक अवतार धारण किये। अमृतपान करते समय देवताओंकी पंक्तिमें छिपकर बैठे हुए राहु और केतुको विष्णुने सूर्य और चन्द्रमासे जाना।

भावार्थ– एकबार दैत्योंसे परास्त होकर देवगण विष्णुकी शरणमें गये। विष्णुने प्रसन्न होकर कहा–हे देवगण! मन्दराचलको मथानी और वासुकिनागको रस्सी बनाकर दैत्य और दानवोंके साथ तुम समुद्रका मन्थन करो। उससे जो अमृत निकलेगा उसे पीकर तुम अमर हो जाओगे। मैं ऐसी युक्ति करूंगा जिससे तुम्हारे वैरी दैत्योंको अमृत न मिल सकेगा। यह सुनकर देव और दानवोंने समुद्रका मन्थन किया। उसमेंसे अमृतका कलश लिये हुए धन्वन्तरि प्रकट हुए। दैत्योंने उनके हाथसे वह अमृतकलश छीन लिया। तब विष्णुने मोहनीका रूप धारण करके अपनी मायासे दैत्योंको मोहित कर दिया और उनसे अमृत कलश लेकर जब वे देवोंको पिलाने लगे तो राहुभी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चन्द्रमाका रूप धारण करके देवोंके बीचमें बैठकर अमृत पीने लगा। तब चन्द्र और सूर्यने संकेतसे यह बात विष्णुको सूचित कर दी। विष्णुने तत्काल राहुका मस्तक काट डाला ॥ ४६ ॥

जातेऽरिजाते ज्वरदाहमूर्छाः सस्वेदशोकारतिखेदचिन्ताः ।
हरेरभूवन्नपि भीतिपूर्वा हते पुनर्विस्मयगर्वनिद्राः ॥ ४७ ॥

अर्थ– शत्रुसमूहके जन्म लेनेपर विष्णुको भी भयके साथ ज्वर, दाह, मूर्छा, पसेव, शोक, अरति, खेद और चिन्ता सताती थी। और जब वह उन्हें मार देते थे तो उनको गर्व, आश्चर्य और निद्रा घेर लेती थी ॥ ४७ ॥

स्थितं जगत्तज्जठरे समस्तं स्थितो वटः कुत्र पुनर्जगत्याम् ।
स कस्य पर्णान्तरशेत विष्णुः सन्तः प्रसन्ना इति तर्कयन्तु ॥ ४८ ॥

अर्थ– सज्जनगण प्रसन्नमनसे विचार करें कि जब यह समस्त जगत् विष्णुके उदरमें स्थित है तो जगतमें वटवृक्ष कहांपर स्थित है और विष्णु किसके पत्तोंके बीचमें सोता है? ॥

भावार्थ– वैदिकमतमें विष्णुविषयक जो वर्णन है वह युक्तियुक्त नहीं है। तथा इस श्लोकका अभिप्राय ४५ वे श्लोकमें आया है और उसीके भावार्थमें पृथ्वीका बहना आदिका उल्लेख किया है॥ ४८ ॥

सर्वं जगद्विष्णुमयं वदन्तस्तन्वन्ति किं तादृशि तत्र रागैः ।
विच्छेदभेदज्वलनादनानि विण्मूत्रणोच्छिष्टविसर्जनानि ॥ ४९ ॥

अर्थ– जो इस समस्त जगत्को विष्णुमय कहते हैं वे उस विष्णुमय जगतमें रागके वश होकर छेदना, भेदना, जलाना, खाना, और मल, मूत्र तथा जूठन का त्याग क्यों करते हैं ॥ ४९ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अलं कलावैभवरूपवर्यमपि स्वभर्तारमपास्य लक्ष्मीः ।
अन्यत्र रज्यत्यधमेषु नूनमपात्ररागः सहजोऽङ्गनानाम् ॥ ५० ॥

अर्थ– अधिक क्या कहें, कला, ऐश्वर्य और रूपसे श्रेष्ठ भी अपने पति विष्णुको छोड़कर लक्ष्मी अन्य नीच जनोंमें अनुराग करती है। ठीक ही है स्त्रियोंका अपात्रमें अनुराग होना स्वाभाविक ही है ॥ ५० ॥

शिवोत्तमाङ्गेऽपि पितामहस्य जिह्वाग्रलेऽपि समुदारचिह्नम्[१] ।
अप्यात्मतातोरसि शम्बरारिरस्थापयद्यत्तदभूदनङ्गः ॥ ५१ ॥

अर्थ– शिवजीके मस्तकपर, ब्रह्माकी जीभके अग्र भागमें और अपने पिता विष्णुके वक्षःस्थलपर कामदेवने जो अपना विशाल चिह्न स्थापित किया उससे वह अनंग [शरीररहित] हो गया।

भावार्थ- यद्यपि शिवजीने कामदेवको भस्मकर दिया किन्तु उसने अपनी छाप सब पर लगाही दी। देखो, शिवके मस्तकमें गंगा विराजमान है, ब्रह्माने अपनी पुत्री सरस्वतीको भार्या बनाकर अपने जिह्वाग्रमें रखा, विष्णुके वक्षःस्थलमें लक्ष्मी रहती है, ये सब कामदेवके ही तो चिह्न है, काम न होता तो क्यों शिवजी गंगाको मस्तकपर धारण करते, और विष्णु क्यों लक्ष्मीको चिपटाये फिरते। मदनसे रुष्ट होकर महादेवने अपने तृतीय नेत्रसे उसको जला दिया जिससे वह अनङ्ग–शरीररहित हुआ ॥ ५१ ॥

स स्यान्नृसिंहोऽपि सतामसेव्यः संसाध्य देशं समयादिकं च ।
विदार्य विद्वेषिणमन्त्रमालाविभूषितात्मीयविशालवक्षाः ॥ ५२ ॥

---

१ ल. स्वमुदारचिह्नम्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ– जिसने देश, काल वगैरहको अपने अनुकूल करके अपने शत्रु हिरण्यकशिपुका वध किया और उसका उदर फाड़कर उसके आंतोंकी मालाओंसे अपना विशाल वक्षःस्थल भूषित किया वह नृसिंह भगवान्‌भी सज्जनोंके द्वारा सेवनीय नहीं हो सकता।

भावार्थ– प्रह्लाद विष्णुभक्त था और उसका पिता हिरण्यकशिपु विष्णुका द्वेषी था। अन्तमें विष्णुने नृसिंह अवतार धारण करके हिरण्यकशिपुका उदर फाड़ डाला और उसकी आंते निकालकर अपने गलेमें पहनीं ॥ ५२ ॥

लोकोन्नतोऽप्यर्थितया बबन्ध यो वामनीभूय बलिं निजेष्टम्।
अनाप्य सत्यापयति स्म सि (भि) क्षायायेत्य चौष्ठं दशतीति वाचम् ॥

अर्थ– जगतमें श्रेष्ठ होते हुए भी विष्णुने अर्थी बनकर और वामनावतार लेकर बलि नामक दैत्यराजाको वचनबद्ध किया। और अपनी इष्ट वस्तुके प्राप्त न होनेपर अपने ओष्ठको डसते हुए क्रोधको प्रकट कर अपने वचनको पूरा कराया।

भावार्थ– पुराणोंमें वामनावतारका कथन आता है। दैत्योंका राजा बलि यज्ञोंका अनुष्ठान करके बलवान् होना चाहता था। इससे देवलोग बडे घबराये। तब विष्णु भगवान् वामन अवतार धारण करके बलिके यज्ञमें सम्मिलित हुए। बलिने प्रसन्न होकर उन्हें इच्छित वस्तु मांगनेको कहा और वामन–रूपधारी विष्णुने तीन पैड़ जमीन मांगकर उसका संकल्प करा लिया। किन्तु विष्णुने दो पैड़में ही समस्त भूमि नाप ली, तीसरे पैरके लिये स्थान नहीं रहा। तब बलिने क्षमाप्रार्थना वगैरह करके विष्णुको सन्तुष्ट किया ॥ ५३ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रामो न पूज्यो यदबोधि नैष प्रियापहारं भ्रमितस्तदाभूत् ।
दग्धश्च चिन्ताज्वरदाहशोकैर्जघान सैन्येन समं दशास्यम् ॥ ५४ ॥

अर्थ– रामचन्द्रभी पूज्य नहीं हैं क्यों कि वे सीताके अपहरणको नहीं जान सके और उसके हरे जानेपर एकदम पागल जैसे होगये। तथा चिन्तारूपी ज्वरके दाह और शोकमें उन्हें जला डाला। फिर उन्होंने सेनाके साथ रावणका वध किया ॥ ५४ ॥

वाराननेकानपि राजवंशान्वंशानिवामूनुदमूलयद्यः ।
रामः परश्वादिरसौ किमर्च्यः पिबत्यपेयं बलभद्ररामः ॥ ५५ ॥

अर्थ– जिसने अनेकबार राजवंशोंको वंशों [वांसों] की तरह जडसे उखाड फेंका वह परशुरामभी कैसे पूज्य हो सकता है ? तथा श्रीकृष्णके बड़े भाई बलभद्ररामभी न पीने योग्य वस्तुओंको अर्थात् मदिराको पीते थे अतः वह भी पूज्य नहीं हो सकते ।

भावार्थ– हिन्दुपुराणोंमें परशुरामकोभी एक अवतार माना है। इन्होने इक्कीस बार क्षत्रियोंको मारकर पृथ्वीको क्षत्रियशून्य कर दिया था ॥ ५५ ॥

रागादगच्छत्सुगतोऽन्त्यजामप्यसावनङ्गार्ततयाभ्युपेताम् ।
यो ब्रह्मचर्याय विमुच्य योनिमुद्भिद्य पार्श्वादुदितः सवित्र्याः ॥५६॥

अर्थ– कामसे पीडित होकर आई हुई चण्डालनीके साथ बुद्धदेवने रागके वशीभूत होकर रमण किया और जन्मके समय ब्रह्मचर्यकी रक्षाके लिये योनिको छोडकर माताकी कोखको फाड़कर जन्म लिया ॥५६॥

तथागतो वीक्ष्य खरान्स्मरार्तांस्तपोबलाच्चारुभगा खरी सन् ।
तदा रतिं तैस्तनुते स्म रागात्ततः स जातो भगवत्समाख्यः ॥५७॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ– तथा गधोंको कामसे पीडित देखकर बुद्धदेव तपके प्रभावसे सुंदर योनिवाली गधी बन गये और उनके साथ रागपूर्वक रमण किया। तबसे वह भगवान कहे जाने लगे। भग-योनिसे युक्त होनेसे बुद्धको भगवान् नाम प्राप्त हुआ ॥ ५७ ॥

अकारणद्वेष्ययमेक एव तथागतः साकमशेषसत्त्वैः ।
न चेत्तथोपादिशदेष किं तान्नरा नि (त्रि[1]) हत्यैव यथा नयेयुः ॥५८॥

अर्थ– एक वह बुद्ध ही समस्त प्राणियोंसे विना कारणके द्वेष करनेवाला है, यदि ऐसा न होता तो वह उन मनुष्योंको ऐसा उपदेश क्यों देता जिससे वे उन्हें मारकर लाते हैं।

भावार्थ– स्वयं मरे हुए अथवा दूसरोंसे मारे गये प्राणियोंका मांस खानेमें दोष नहीं है ऐसा उपदेश बुद्धने लोगोंको दिया। इससे उसका प्राणियोंके साथ निष्कारण द्वेष था ऐसा सिद्ध होता है॥ ५८ ॥

तथागतः सर्वजनेऽप्यमुष्मिन्वृथाधमो द्वेषभरं[2] व्यधत्त ।
न चेत्किमेनं नरकान्नयात्याः[3] पलाशनीकृत्य निजोपदेशात् ॥ ५९ ॥

अर्थ– इस अधम बुद्धने व्यर्थही इन सब प्राणियोंके विषयमें द्वेषका भार उठाया। यदि ऐसा न होता तो अपने उपदेशसे सबको मांसभक्षी बनाकर नरकमें क्यों ले जाता? ॥ ५९ ॥

नात्मास्ति जन्मास्ति पुनर्न कर्ता कर्मास्ति साफल्य[4] (?) तदस्ति बन्धः
बद्धो न याता न शिवस्य यानमस्तीति मोहात्स विरुद्धमाख्यत् ॥ ६०

अर्थ– न आत्मा है, न जन्म है, न कर्ता और कर्म है, न बन्धकाही कुछ फल है, न कोई बन्धनेवाला है, न कोई मोक्षको

१ ल. नरा निहत्यैव २ ल. वृथाधमो द्वेषभरं ३ ल. नयत्याः
४ ल. साफल्यवदस्ति बद्धः।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जानेवाला है और कोई मोक्षको ले जानेवाला है यह सब विरुद्ध कथन उसने अज्ञानवशही किया है ॥ ६० ॥

सर्वत्र सत्यामपि दृष्टपूर्वे सम्यक्तदेवेदमिति प्रतीतौ ।
संमोहतो हन्त तथागतेन समभ्यधायि क्षणिकं समस्तम् ॥ ६१ ॥

अर्थ— पहले देखे हुए समस्त पदार्थोंमें 'यह वही है जो पहले देखा था' इस प्रकारकी प्रतीति होनेपरभी, खेद है बुद्धने मोहवश समस्त जगतको क्षणिक (क्षण क्षणमें नष्ट होनेवाला) बतलाया ॥६१॥

मनोज[1]मद्याशनमांसलाभे मानास्मितं मारजितौ रतिश्च ।
स्युः शोकभे[2] (खे) दाविह दुर्लभेषु स्वेदश्च चिन्ताज्वरदाहमूर्च्छाः॥६२

अर्थ— मारजित्को–बुद्धको काम, मद्यपान और मांस भक्षणकी प्राप्ति होनेपर घमण्ड है, और कामविकार पैदा होता है। और इनके न मिलनेपर शोक, खेद, चिन्ता, ज्वर, दाह, मूर्छा वगैरह उत्पन्न होते हैं ॥ ६२ ॥

ते दृष्टिबोधावृतिदृष्टिमोहपाकान्न पश्यन्ति शिवादयो हि ।
जानन्ति च श्रद्दधते यथावत्किञ्चिन्न तन्नाल्[3]पमिहोपदेष्टुम् ॥ ६३ ॥

अर्थ— किन्तु इन जीवादितत्त्वोंको शिवआदि यथार्थ नहीं देखते, नहीं जानते और श्रद्धा नहीं करते हैं क्यों कि उनके ज्ञानावरण, दर्शनावरण और दर्शनमोहनीय कर्मका तीव्र उदय है। और थोडाभी न देखते हैं, न जानते हैं और न श्रद्धान करते हैं इस लिये यहां उनका कथन करना योग्य नहीं है। जो कुछ थोडा बहुत वे जानते हैं और श्रद्धान करते हैं वह यहां कथन करनेके लिये पर्याप्त नहीं है ॥ ६३ ॥

१ ल. मनोज्ञ २ ल. शोकखेदाविह ३ ल. तन्नालमिहोपदेष्टुम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दुर्वर्तनारातिवरप्रदानात्स्वापायमात्रस्य भविष्यतो न ।
वीक्ष्यागतिप्रत्ययवेदकत्वान्येषां पुनः किं निखिलार्थवृत्तेः ॥ ६४ ॥

अर्थ– जिसका व्यवहार दुष्ट है उस अपने शत्रुकोभी वर देनेसे आगामीमें होनेवाले अपने अनिष्टको भी न जान सकने वाले शिव वगैरह देवता न देखते थे, न उसके आगमनको जानते थे तथा उसके कारणोंकोभी नही जानते थे। फिर सर्वज्ञताकी बात तो दूरही रही ॥ ६४॥

इतीद्धरागादिसमस्तदोषाः स्वापायमात्रेक्षकतादिशून्याः ।
एतेऽपि सत्त्वान्यदि तारयेयुः शिलाः शिलाः संसृतितीव्रसिन्धौ[1] ॥६५।

अर्थ– इस प्रकार जिनमें राग आदि समस्त दोष भरे हुए हैं और जो अपने अनिष्टको भी नहीं देखते हैं और नहीं जान सकते वे भी यदि जीवोंको संसाररूपी महासमुद्रसे तार सकते हैं तो पत्थर भी पत्थर को तिरा सकता है ॥ ६५ ॥

प्रासादहेमाण्डकसेवकादीन्प्रेक्ष्य श्रिये यः श्रयतीश्वरादीन् ।
स राजवेषान्स तदीयचिह्नान् न सम्पदे नैष भजेन्नटांश्च ॥ ६६ ॥

अर्थ– जो इनके महलके सुवर्णकलश, सेवक वगैरह को देखकर विभूतिकी प्राप्तिके लिये इन ईश्वर वगैरहकी सेवा करता है वह राजवेष धारण करनेवाले तथा इन आप्ताभासोंके हरिहरादिकोंके गदादि चिह्न धारण करनेवाले उन नटोंकी संपत्तिके लिये उपासना क्यों नहीं करते हैं? अर्थात् ये आप्ताभास नटोंके समान हैं ॥ ६६ ॥

अप्याश्रिता आप्तधिया शिवाय शिवादयस्ते ददते श्रितेभ्यः ।
नीलोत्पलानामिव माल्यमत्या नीलोरगा निःसमदुःखमेव ॥ ६७ ॥

---

१ ल. सिन्धोः

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ– 'ये सच्चे देव हैं' इस बुद्धिसे सुखके लिये आराधना-करने परभी वे शिवादि यदि अपने आश्रितोंको कुछ देते हैं तो नील कमलोंकी माला समझकर नीले सर्पोंको अपनानेके समान वह तीव्र दुःखदायक ही होता है ॥ ६७ ॥

अथाप्रमाणैरयथार्थवादिदोषाचितं क्षोदलवासहिष्णु ।
असार्वमेतै रचितं वचोऽपि स्यादप्रमाणं सुपरीक्षकाणाम् ॥ ६८ ॥

अर्थ– तथा इन कुदेवोंके द्वारा झूठेप्रमाणोंके आधार पर जो शास्त्र रचे गये हैं, वे असत्य बोलनेवाले व्यक्तियोंके दोषोंसे भरे हुए हैं, उनसे किसीका भी हित नहीं हो सकता और वे जरासेभी तर्क वितर्क को सहन नहीं कर सकते, अतः परीक्षाप्रधानियोंके लिये वे अप्रमाण हैं ॥ ६८ ॥

तत्सर्वथैकान्तमनेन तत्त्वाभासं प्रणीतं सकलं च तत्त्वम् ।
भवेदनेकान्तमिदं प्रमाणादेकान्तमप्यर्पिततो नयाद्यत् ॥ ६९ ॥

अर्थ– उसमें सर्वथा एकान्तवादरूप मिथ्यातत्त्वका कथन है। किन्तु प्रमाणकी दृष्टिसे समस्त तत्त्व अनेकान्तस्वरूप है और नयकी दृष्टिसे एकान्तस्वरूप है।

भावार्थ– जैनोंके सिवा अन्य सब मत एकान्तवादी हैं; क्यों कि वे वस्तुको एकही दृष्टिसे देखते हैं। किन्तु जैनदर्शन अनेकांत-वादी है, वह वस्तुको विभिन्न दृष्टिकोणोंसे देखता है। सम्पूर्ण वस्तुको ग्रहण करनेवाले ज्ञानको प्रमाण कहते हैं और वस्तुके एक अंशको ग्रहण करनेवाले ज्ञानको नय कहते हैं। जब प्रमाणके द्वारा हम किसी वस्तुको जानते हैं तो अनेक धर्मात्मक ही प्रतीत होती

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

है। अतः प्रमाणकी दृष्टिमें वस्तु अनेकांतस्वरूप ही ठहरती है। और जब हम नयके द्वारा वस्तुको जानते हैं तो हमें उसके एक धर्मकी ही प्रतीति होती है। अतः नयदृष्टिसे ही वस्तु एकांतस्वरूप है। किन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि वस्तुमें केवल एक ही धर्म है, अन्य धर्म नहीं है, प्रयोजन न होनेसे वस्तुमें अनेक धर्मोंके रहते हुए भी उन सबकी विवक्षा नहीं की जाती। किन्तु ज्ञाताको जिस धर्मकी विवक्षा होती है उसी धर्मकी मुख्यतासे वह वस्तुको ग्रहण करता है। अतः सर्वथा एकांतरूप नहीं है अतः एकांतवाद तत्त्वाभास है और अनेकांतवाद ही सच्चा तत्त्व है ॥६९॥

तान्यप्रशस्तानि तदाश्रयाणि श्रद्धानबोधाचरणान्यधर्मः।
संसारमार्गश्च भवन्ति धर्मो यत्प्रत्यनीकानि च मोक्षमार्गः ॥ ७० ॥

अर्थ– उन एकान्तवादी-शास्त्रोंमें जिन मिथ्याश्रद्धान, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्रका कथन है, वह सब अधर्म हैं और संसारके कारण हैं। उनके विपरीत सच्चा श्रद्धान, सच्चा ज्ञान और सच्चा चारित्र धर्म है और मोक्षका मार्ग है ॥ ७० ॥

तान्याचरन्तः सपरिग्रहा ये सारम्भहिंसाः सतनूजदाराः।
अदन्त्यभोज्यानि पिबन्त्यपेयान्यमी किमर्च्या यतयो भवेयुः ॥ ७१ ॥

अर्थ– उन मिथ्याश्रद्धान वगैरहका आचरण करनेवाले जो परिग्रही और आरम्भ तथा हिंसामें फंसे साधु हैं, जो स्त्रीपुत्रोंके साथ निवास करते हैं, वे न खाने योग्य पदार्थोंको खाते हैं और न पीने योग्य वस्तुओंको पीते हैं, ऐसे साधु पूज्य कैसे हो सकते हैं? ॥ ७१ ॥

अन्धा इवान्धैरबुधैरमीभिर्भ्रान्त्योपदिष्टेष्वबुधा भ्रमन्ति।
मार्गेषु ये नाप्तसुदृष्टिमार्गा गृहाश्रमस्थाः किमु धार्मिकास्ते ॥ ७२ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ– जैसे अन्धे मनुष्योंके द्वारा ले जाये गये अन्धे मनुष्य मार्गमें भटकते फिरते हैं वैसेही उक्त साधुओंके द्वारा भ्रमसे बतलाये गये मार्गोंमें जो अज्ञानी गृहस्थ भटकते फिरते हैं और जिन्हें सुष्ठु रीतिसे देखे गये मार्गका पता तक नहीं है, क्या वे गृहस्थ धर्मात्मा हो सकते हैं ? ॥ ७२ ॥

इत्युज्ज्वलद्दोषगणैकगेहमस्पृष्टमेतत्तदणीयसापि ।
गुणेन नाप्तादिकषट्कमज्ञस्त्यजेदिव श्वाजिनखण्डपुञ्जम् ॥ ७३ ॥

अर्थ– इस प्रकार जो प्रकटरूपसे दोषसमूहके घर हैं और जिनमें गुणका लेश भी नहीं है तथा जो आप्तादिक षट्करूप नहीं हैं अर्थात् सच्चे देव, गुरु, शास्त्र तथा सम्यक्त्व, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्-चारित्ररूप नहीं है परंतु इनसे उलटे हैं अर्थात् कुदेव, कुगुरु तथा कुशास्त्ररूप हैं और मिथ्यात्व, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्ररूप हैं उनको अज्ञ नहीं छोडता है जैसे कुत्ता चमडेके टुकडोंके ढेरको नहीं छोड देता है ।

सिताम्बराः सिद्धिपथच्युतास्ते जिनोक्तिषु द्वापरशल्यविद्धाः ।
निरञ्जनानामशनं यदेते निर्वाणमिच्छन्ति नितम्बिनीनाम् ॥ ७४ ॥

अर्थ– जैन श्वेताम्बर सम्प्रदाय भी मोक्षमार्गसे भ्रष्ट है, जिन भगवानके कथनोंमें संशयरूपी शल्यके द्वारा उसका अन्तःकरण छिदा हुआ है अर्थात् जिन भगवानके वचनोंमें उसे सन्देह है । क्यों कि इस सम्प्रदायके अनुयायी केवलीको कवलाहारी और स्त्रियोंको मुक्ति मानते हैं ॥ ७४ ॥

ते यापनीसङ्घजुषो जनाश्च सिद्धान्तभागेन सिताम्बराभाः ।
तेऽमी चतुर्धापि च तैः समायन्त्येकान्तकृत्याश्रितकाष्ठसङ्घाः ॥७५॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

त्यक्ताखिलज्ञोदितमुख्यकालद्रव्यास्तिता द्राविडसङ्घिनो ये।
निःसंयमा ये च निरस्तपिच्छा[1] निष्कुण्डिका ये च निरस्तशौचाः ॥

अर्थ– और जो यापनीय संघके अनुयायी हैं उनके सिद्धान्त भी श्वेताम्बरोंके समान हैं। तथा अन्य जो ये चार प्रकारके जैनसंघ हैं ये भी उन्हींके समान हैं। उनमें एक तो काष्ठासंघ है जो एकान्त-रूपी हसुंएको अपनाये हुए हैं। दूसरे द्रविड संघ है, इस संघवाले सर्वज्ञके द्वारा कहे गये मुख्य कालद्रव्यके अस्तित्वको नहीं मानते। तीसरा निःपिच्छ संघ है, इस संघके अनुयायी साधु पीछी नहीं रखते अतः वे संयम नहीं पालते। चौथा निष्कुण्डिका संघ है इस संघ-वाले साधु शौचके लिये कमण्डलु नहीं रखते। अतः वे शौच-पवि-त्रतासे दूर हैं ॥ ७५-७६ ॥

जिनागमस्येति विरोधिवाचः सिताम्बराद्या जिनमार्गबाह्याः।
वाक्यं पदं वाक्षरमार्हतं यद्बाह्यास्ततः[2] श्रद्दधतोऽपि मार्गात् ॥ ७७ ॥

अर्थ– इस प्रकार जिनागमके विरुद्ध कथन करनेवाले श्वेता-म्बर वगैरह जिनमार्गसे बाहर हैं। क्यों कि अर्हन्त भगवानके द्वारा कहे हुए वाक्य, पद अथवा अक्षरको जो नहीं मानता, वह श्रद्धान करते हुए भी मार्गभ्रष्ट हैं ॥ ७७ ॥

अस्मादमून्श्वेतपटादिकाप्तानाप्तागमादीन्प्रतिमालयांश्च।
अस्यन्तु शैवाधिकृतानिवार्हदाज्ञैकवश्या अनिशं त्रिधापि[3] ॥ ७८ ॥

अर्थ– अतः जो अर्हन्त भगवानकी आज्ञाको ही सर्वोपरि मानते हैं उन्हें शैवोंके देव, शास्त्र और गुरुओंकी तरह ही श्वेताम्बर, वगैरहके देवों, शास्त्रों और मन्दिरोंको मन वचन कर्मसे कभी भी नहीं मानना चाहिये ॥ ७८ ॥

१ ल. निरस्तपिञ्छाः। २ ल. स्सतोऽश्रद्दधतोऽपि ३ ल. शैवादि

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्वप्नेऽपि रुच्याः सुधियां न वेदा द्विजोत्करस्याप्तपलाशनादेः ।
जाताः सहायाः स्वयमेव नृत्यत्पिशाचजातेः पटहा इवाप्ताः ॥७९॥

अर्थ– बुद्धिमान मनुष्योंको वेद स्वप्नमें भी रुचिकर नहीं होते । जैसे स्वयंही नृत्य करते हुए पिशाचोंके नाचनेमें नगारे सहायक हो जाते हैं वैसेही मांस आदिका सेवन करनेवाले ब्राह्मणोंके लिये वे वेद सहायक हुए ॥ ७९ ॥

वेदत्रयैस्तैर्विहितापि हिंसा धर्माय नैवाततशर्मणे स्यात् ।
अस्यां परस्या[illegible] यत्समैव हिंसाभिसन्धिः खलु यातना च ॥८०॥

अर्थ– वेदोंके द्वारा [illegible]हितहिंसा भी न तो धर्मका कारण है और न विस्तृत–विशाल सुख[illegible] कारण है । क्यों कि वेदविहित हिंसा हो या अन्य हिंसा हो दोनोंमेंही हिंसाकी भावना और यातना (कष्ट) समानही होती है ॥ ८० ॥

सदाप्यहिंसाजनितोऽस्ति धर्मः स जातु हिंसाजनितः कुतःस्यात् ।
न जायते तोयजकञ्जमग्नेर्न चामृतोत्थं विषतोऽमरत्वम् ॥ ८१ ॥

अर्थ– धर्म सदा अहिंसासेही होता है, कभी भी वह हिंसासे कैसे हो सकता है ? क्यों कि पानीमें पैदा होनेवाला कमल आगसे पैदा नहीं हो सकता और न अमृतपानसे होनेवाला अमरत्व विषपानसे होता है ॥ ८१ ॥

पञ्चापि सन्नैकहृषीकजीवाः पञ्चेन्द्रियैकाङ्गिवधाघदानाः ।
नमो जिनायेत्युदितार्थदः स्यान्नः पञ्चवारोच्चरितोऽपि नाद्यः ॥ ८२

अर्थ– पांचोंभी प्रकारके एकेन्द्रिय जीवोंको मारनेसे उतना पाप नहीं होता जितना पाप एक पञ्चेन्द्रिय प्राणीको मारनेसे होता

१ ल. वेदक्रमैः

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

है; ' नमो जिनाय ' जिन भगवान्को नमस्कार हो इस वाक्यका प्रथम अक्षर जो ' न ' वह पांच बार उच्चारनेपरभी 'नमो जिनाय' ऐसा वाक्योच्चार करनेसे जो प्रयोजन सिद्ध होता है उसे सिद्ध नहीं करता है ॥ ८२ ॥

दिशेन्न च स्थावरजातघातस्त्रसैकजीवाहतिजन्यमंहः ।
दिशत्यनेकाहहिमप्रवृष्टिर्दिने किमेकत्र जलं च वृष्टेः ॥ ८३ ॥

अर्थ– बहुतसे स्थावर (एकेन्द्रिय) जीवोंका घात एक त्रस जीवके घातसे होनेवाले पापकी बराबरी नहीं कर सकता। क्या अनेक दिनों तक पडनेवाली ओस एक दिनमें हुई जलकी वर्षाकी बराबरी कर सकती है ? अतः पञ्चेन्द्रिय जीवकी हिंसामें बहुत पाप है॥८३॥

दानादिना स्थावरजातघातं शुष्यत्यघं सूक्ष्ममिहातपेन ।
नीहारवारीव नितान्तमभ्रवारीव नैव त्रसघातवान्तम् ॥८४॥

अर्थ– स्थावर जीवोंके घातसे होनेवाला सूक्ष्म पाप दान वगैरहके देनेसे उसी प्रकार बिल्कुल सूख जाता है जैसे सूर्यके तापसे ओसका जल, किन्तु त्रसजीवोंके घातसे होनेवाला पाप मेघोंके जलकी तरह नहीं सूखता ॥ ८४ ॥

सुराः सुधां स्वःसुलभां शुचिं च स्वादुं च पथ्यां परिहृत्य मांसम् ।
इच्छन्ति चेच्छ्रेष्ठमिदं सुधाया मांसाशिनोऽमी सुरतोऽधिसौख्याः ॥८५

अर्थ– स्वर्गकी सुलभ, स्वादिष्ट और हितकर पवित्र सुधा [अमृत] को छोडकर यदि देवगण मांसको पसन्द करते हैं तब तो मांस अमृतसेभी श्रेष्ठ हुआ और मांस खानेवाले जीव देवोंसेभी अधिक सुखी कहलायें ॥ ८५ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्पृष्टे कथञ्चिल्लक्षतजे च मांसे मद्ये च देवार्चनमाचरन्तः ।
निमज्ज्य भक्त्या निपुणाः कथं तान्निन्द्यान्यमी तान्यपि भोजयन्ति ॥

अर्थ– देवोंकी पूजन करते समय यदि पूजक जराभी रुधिर, मांस या शराबसे छू जाते हैं तो स्नान करते हैं। तब चतुर मनुष्य भक्तिभावसे उन देवोंको घृणाके योग्य मांसादिक कैसे खिलाते हैं ? ॥ ८६ ॥

द्विजातिषूद्भूय मखैरमीषु सुरार्थमन्यै रचितेष्वथैत्य ।
अदन्ति मांसं यदि तर्हि मूलादत्रैव ते तद्भुवि भक्षयन्तु ॥८७॥

अर्थ– देवताओंके लिये दूसरोंके द्वारा किये गये यज्ञोंमें पितर ब्राह्मण होकर आते हैं और वे यदि मांस भक्षण करते हैं, तो मूलरूपसेही आकर वे मांसादिक भक्षण करें ॥ ८७ ॥

सर्वेऽपि विप्राः पितृलोकगाश्च स्मृता वृथा कर्मयु॰॰ च तेषाम् ।
पुरा विशुद्धाः पुनरर्चनीयास्ते किं भवन्त्याहतमद्यमांसाः ॥८८॥

अर्थ– समस्त विप्रों और पितृलोकवासियोंका स्मरण करना व्यर्थ है तथा उनका धर्म-कर्मभी व्यर्थ है; क्यों कि पहले विशुद्ध और फिर पूजनीय होते हुएभी वे मद्य और मांसका आदर कैसे करने लगते हैं ? ॥ ८८ ॥

पिष्टादितो जातमपीह भोज्यादतत्समं मद्यमनन्तजन्तु ।
मदप्रदं वाशुचिधामपाति मान्यावमानाघभरायशोदम् ॥८९॥

अर्थ– यद्यपि मद्य [शराब] पिठ्ठी आदिसे बनता है किन्तु पिठ्ठी [मिले हुए चावल वगैरह] आदिसे बने हुए खाद्य पदार्थोंसे बिलकुल भिन्न होता है, उसमें अनन्त जीव रहते हैं, उसके पीनेसे नशा होता है, वह अपवित्र स्थानमें गिरानेवाला है, मान्य पुरुषोंका अपमान करनेवाला है और अपयशका दाता है ॥ ८९ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शवा भवन्तीह मृताङ्गिसत्वाः श्मशानमेषां पचनस्थली हि ।
ततो ध्रुवं मांसभुजः शवादास्तदीयगेहं नियतं श्मशानम् ॥९०॥

अर्थ- लोकमें मरे हुए प्राणियोंके कलेवरको शव [मुर्दा] कहते हैं और जहां ये शव जलाये जाते हैं उसे श्मशान कहते हैं। अतः जो मांस खाते हैं वे नियमसे शवभक्षी [मुर्दोंको खानेवाले] हैं और उनका घर ' जहां उन शवोंको पकाया जाता है ' नियमसे श्मशान है ॥ ९० ॥

मांसं भवेत्प्राणितनुस्तथैव भवेन्न वा प्राणितनुस्तु मांसम् ।
निम्बो भवेद्भूमिरुहो यथैव भवेन्न वा भूमिरुहस्तु निम्बः ॥९१॥

अर्थ- मांस प्राणियोंका शरीर है किन्तु जो प्राणीका शरीर है वह सब मांस नहीं है। जैसे नीम वृक्ष होता है किन्तु प्रत्येक वृक्ष नीम नहीं होता ॥ ९१ ॥

जीवाङ्गभावे सदृशेऽपि सेव्यं स्यादन्नमेवार्यजनैर्न मांसम् ।
स्यादङ्गनात्वे सदृशेऽपि सेव्या जायैव लोकैर्जननी तु नैव ॥९२॥

अर्थ- शायद कोई कहें कि अन्नभी तो जीवका शरीर है अतः जब अन्न खाते हैं तो मांस क्यों न खावें ? किन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्यों कि यद्यपि अन्नभी जीवका शरीर है और मांसभी जीवका शरीर है, फिरभी आर्यपुरुषोंको अन्नही खाना चाहिये, मांस नहीं। जैसे माताभी स्त्री है और पत्नीभी स्त्री है, किन्तु लोग पत्नीकोही भोगते हैं, माताको नहीं ॥ ९२ ॥

शुक्रार्त्तवोत्थं खलु धातुयोपं सश्लेष्मपित्तं सहमूत्रविष्ठम् ।
निगोदसत्त्वैर्निचितं च मांसं सस्यं तु नेदृक् तदिदं हि भोज्यम् ॥९३

१ ल. हि २ ल. धातुरूपं ३ ल. मूत्रपिष्ठम् ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ– दुसरी बात यह है कि मांस, रज और वीर्यके संयोगसे बनता है, धातुरूप है, उसमें कफ और पित्त रहता है, मूत्र और विष्ठासे सम्बन्ध रखता है तथा निगोदिया जीवोंसे भरा हुआ रहता है, किन्तु अन्नमें ये बातें नहीं हैं, इस लिये अन्नही खाने योग्य है ॥ ९३ ॥

पयोऽस्ति पेयं पलमस्त्यभोज्यं भुवीदृशी वस्तुविचित्रता स्यात् ।
अहेर्विषं जीवितमाददाति[1] ददाति रत्नं खलु देहभाजाम् ॥९४॥

अर्थ– जगतमें वस्तुओंके स्वरूपमें ऐसी विचित्रता है कि [गौका] दूध तो पीने योग्य है किन्तु मांस खाने योग्य नहीं है। एकही सर्पसे विषभी पैदा होता है और रत्नभी। किन्तु विष प्राणियोंका जीवन ले लेता है, जब कि रत्न जीवदान करता है ॥ ९४ ॥

तरूपलादेरपि जायमानो यथाग्निहेमादिरतद्गुणः स्यात् ।
अतद्गुणं मांसजमप्यवश्यं पयस्तथा पेयमतस्तदेतत् ॥ ९५ ॥

अर्थ– आग लकडीसे उत्पन्न होती है किन्तु उसमें लकडीका कोई गुण नहीं पाया जाता। सोना पत्थरसे निकलता है किन्तु उसमें पत्थर वगैरहका कोई गुण नहीं पाया जाता। इसी तरह यद्यपि दूध मांससे उत्पन्न होता है किन्तु उसमें मांसका कोई गुण नहीं पाया जाता, अतः वह पीने योग्य है ॥ ९५ ॥

जज्ञे परस्त्रीरतिजाखिलाङ्गशेफो[2]ऽच्छिनत्ति स्म बलं च जम्भम् ।
अबोधि न स्वस्य च शापमुच्चैरागामिनं तापसतोऽमरेन्द्रः ॥ ९६ ॥

अर्थ-परनारीके साथ सम्भोग करनेके कारण इन्द्रके समस्त शरीरमें योनियां बन गई थीं। उस इन्द्रने जम्भ और बल नामक दो दैत्योंको

१ ल. माददाते ! २ ल. शेफाच्छिनत्ति स्म.

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तो नष्ट कर दिया, किन्तु वह गौतम ऋषिके द्वारा दिये जानेवाले शापको पहलेसे नहीं जान सका।

भावार्थ– हिन्दू धर्ममें इन्द्रकी बड़ी प्रतिष्ठा है। एक बार यह इन्द्र गौतमऋषिकी पत्नी अहिल्यापर आसक्त होगया और ऋषिकी अनुपस्थितिमें ऋषिका रूप बनाकर अहिल्याके साथ रमण करता रहा। जब गौतम लौटे तो रहस्य खुला। उन्होंने इन्द्रको शाप दिया कि चूंकि तुमने योनिमें आसक्त होकर यह कुकर्म किया है, इस लिये तुम्हारे सारे शरीरमें योनियां बन जायेंगी। पीछे इन्द्रके क्षमा-प्रार्थना करनेपर ऋषिने अपने शापमें इतना संशोधन कर दिया वे योनियां आंखके रूपमें बन जायेंगी। तबसे इन्द्र सहस्राक्ष–हजार आंखवाला होगया ॥ ९६ ॥

आधारमप्याश्रितमप्यशेषं दहत्यरातिश्रित[1]पाणिरग्निः ।
हन्तान्तको हन्ति जगन्त्यशान्तिः स राक्षसो भक्षयति ह्यभक्ष्यम् ।९७
गृह्णाति पाशं किमपि प्रचेताः स मर्दयत्यग्निसखः समस्तम् ।
सख्युर्धनेशोऽप्यहरन्न भिक्षां सर्वेऽपि तस्मादधमा दिशापाः[2] ॥ ९८

अर्थ– अग्नि अपने आधारकोभी जला देती है और जो उसका आश्रय लेता है उसेभी जलाकर भस्म कर देती है। इस अग्निके हाथ वीरभद्रने तोड डाले। और यमराज समस्त जगतको मार डालते हैं। यह राक्षस जो न खाने योग्य है उसेभी खा डालता है। वरुण हाथमें नागपाशको लिये रहता है। वायु सबको नष्ट भ्रष्ट कर डालता है और कुबेर अपने मित्रको-महादेवको भिक्षा मांगनेसे नहीं रोक सका। कुबेर धनी होनेपरभी अपने मित्रको–महादेवको समृद्ध नहीं बना

१ ल. च्छित. २ ल. दिगीशाः

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सका। अतः सभी दिक्पाल अधम हैं।

भावार्थ– हिन्दू धर्ममें आठ दिशाओंके आठ दिक्पाल माने गये हैं, पूर्व दिशाका इन्द्र, अग्नेय कोणका अग्नि, दक्षिण दिशाका यम नैर्ऋत्यकोणका नैर्ऋत, पश्चिमदिशाका वरुण, वायव्यकोणका वायु, उत्तरदिशाका कुबेर और ईशान कोणका ईश। इन सब देवताओंकी पूजा होती है। इसीसे ग्रंथकारने इनका स्वरूप बतलाते हुए इन्हें अपूज्य ठहराया है ॥ ९७-९८ ॥

प्रत्येक दिशाका एक एक ग्रह होता है। अतः ग्रहोंकोभी अपूज्य ठहराते हुए ग्रन्थकार प्रत्येक ग्रहका कथन करते हैं—

लोकं तपन्नुद्धतदन्तपङ्क्तिः स्वस्यापि सूतस्य न पाददायी।
मन्देहरुद्धात्मगतिश्च राहोरुच्छिष्टमेषोऽस्तमुपैति भास्वान् ॥ ९९ ॥

अर्थ– लोकको ताप देनेवाला, वीरभद्रने जिसकी दन्तपंक्ति तोड दी है, और जिसके सारथि अरुणके पैरभी नहीं हैं, मन्देह नामके राक्षसके द्वारा जिसकी गति रोकी जाती है, और जो राहुके द्वारा ग्रसा जाकर राहुके मुखकी जूठन है ऐसा यह सूर्य प्रतिदिन अस्त होता है ॥ ९९ ॥

अनाथनारीव्यथनैनसा किं नाब्जः कलङ्क्याकलिताहिदंशः।
अत्तुं[१] सुरैश्छिन्नतनुर्भवत्या दोषाकरः श्वेततनुः क्षयी च ॥ १०० ॥

अर्थ- अनाथा स्त्रीको कष्ट पहुंचानेके पापसे क्या चन्द्र राहुसे ग्रस्त और कलंकी नहीं हुआ? तथा देवता चन्द्रमाका पान करते हैं अतः उसका शरीर खण्डित होता है, प्रतिदिन उसकी एक एक कला घटती जाती है, वह क्षयी तथा दोषोंका घर है अथवा

१ ल. आत्तं

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दोषा-रात्रिको करनेवाला है, उसका शरीर सफेद है ॥ १०० ॥

भावार्थ– ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि चन्द्रमा बृहस्पतिकी पत्नी ताराको हर लिया था और उससे उसको गर्भ रह गया था। इसपर देवों और दानवोंके बीचमें महायुद्ध हुआ था, उसी पापके कारण चन्द्रमा कलंकी होगया। उसमें कलंक दिखाई देता है और उसका रंगभी सफेद होगया ॥ १०० ॥

सितांशुसूरौ जनितौ कदाचिदीशस्य नेत्रे यदि तर्ह्यतः प्राक्।
भूताधिपोऽन्धो भुवनं तमस्वि नाप्यैहिकामुत्रिककर्म नाम ॥ १०१॥

अर्थ– यदि ईश्वरके दो नेत्र चन्द्र और सूर्य किसी समय उत्पन्न हुए तो उससे पहले वह ईश्वर अन्धा हुआ और यह लोक अन्धकारसे पूर्ण हुआ तथा फिर इसमें इस लोक और परलोक सम्बन्धी क्रियाकर्मभी कहां रहा ?

भावार्थ– जो लोग चन्द्र और सूर्यको ईश्वरके दो नेत्र मानते हैं और उनकी उत्पत्ति बतलाते हैं उनके ऊपर ग्रन्थकार उक्त दोषका आरोपण करते हैं ॥ १०१ ॥

सितांशुसूरग्रहणे जगत्यां[१] त्याज्यं यदि स्याज्जलमालयस्थम्।
आज्यादिकं चाखिलमालयस्थमन्यत्सरस्यादि जलं च किं न ॥१०२

अर्थ– जगतमें सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहणके होनेपर यदि घरमें रखा हुआ जल ग्रहण करनेके योग्य नहीं रहता तो घरमें रखा हुआ घी, दाल, आटा वगैरह तथा तालावोंका जलभी ग्रहण करनेके अयोग्य क्यों नहीं है ?

भावार्थ– हिन्दू धर्मके अनुसार ग्रहणके समय घरमें रखे हुए

१ ल. जगत्या.

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जल वगैरहको दूषित बताया गया है। ग्रन्थकार कहते हैं घरका जलही दूषित क्यों हो जाता है, घरमें रखी हुई अन्य खाद्य सामग्री तथा नदी वगैरहका जल दूषित क्यों नहीं होता, ग्रहणका प्रभाव तो समीपर होता होगा? ॥ १०२ ॥

अङ्गारकोऽङ्गारवदुग्रवृत्तिरलं बुधोऽप्यत्रजदिन्दुकान्ताम् ।
अनात्मवादं गुरुरप्यकार्षीदन्धः स शुक्रः शनिरिद्धमान्द्यः ॥ १०३ ॥

अर्थ– मंगल ग्रहको अंगारक कहते हैं सो ठीकही है, वह अंगारेकी तरहही उग्र होता है। बुध ग्रह चन्द्रमाकी पत्नीके साथ फंसा था। बृहस्पति चार्वाक मतको जन्म देनेवाला है। शुक्र अन्धा है और शनिचर देवता तो मन्दगति प्रसिद्धही हैं ॥ १०३ ॥

राहुर्मुहुः पीडितराजमित्रः क्रूरः स केतुः किल कुर्वते ते।
सर्वेऽप्यनुच्चानि पदान्यवाप्य सर्वापदं दुर्जनवज्जनानाम् ॥ १०४ ॥

अर्थ– राहु चन्द्रमा और सूर्यको बार बार पीडा पहुंचाया करता है, केतुभी क्रूर है। ये सभी ग्रह नीचे स्थानमें होनेपर दुष्ट मनुष्योंकी तरह मनुष्योंको सब प्रकारके कष्ट देते हैं ॥ १०४ ॥

पाणौ कथञ्चित्परिदृष्टरक्तमांसे जुगुप्सामधमोऽपि गच्छन् ।
न तेन भुङ्क्तेऽतनुरक्तमांसान्यन्याङ्गजातान्यपि भैरवोऽत्ति॥१०५

अर्थ– हाथोंमें थोडासाभी रक्त मांस लगा हुआ देखकर नीच मनुष्यभी ग्लानि करता है और उस हाथसे खाता नहीं है। किन्तु शिवजीका पार्श्वचर भैरव दूसरोंको मारकर उनका रक्त मांस खूब खाता है ॥ १०५ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गतिस्वभावात्तमनोऽन्धसोऽपि ग्रहाः श्रिताध्वानगिरिद्रुमापः ।
अज्ञैरजादीनभिपात्य हिंसानन्दाख्यरौद्रान्मुदमाप्नुवन्ति ॥ १०६ ॥

अर्थ– ग्रह सदा चलते रहते हैं और मानसिक आहार करते हैं। तथा मार्ग, पर्वत, वृक्ष और जलका आश्रय करते हैं। फिरभी अज्ञानी लोग बकरे वगैरहका बलिदान करके हिंसानन्द नामक रौद्रध्यानसे उन्हें प्रसन्न करते हैं ॥ १०६ ॥

नश्यन्ति नागा नकुलस्य नादैरदन्त्यभक्ष्याण्यपि दर्दुराखून् ।
दशन्ति भक्त्या भजतोऽपि जीवांश्चित्रं तदेषां भुवि देवतात्वम्॥१०७

अर्थ– सर्प नेवलेका शब्द सुनतेही भाग जाते हैं। और अभक्ष्य– न खाने योग्य मेंढक और चूहोंकोभी खाते हैं। तथा जो प्राणी भक्तिभावसे उनकी सेवा करता है उसेभी डसते हैं। अतः पृथ्वीपर उनका देवपणा आश्चर्यजनकही है।

भावार्थ– सर्पोंको मूढ लोग नागदेवता मानकर पूजते हैं। उसीपर ग्रन्थकारने आपत्ति की है ॥ १०७ ॥

आमन्त्रणाद्यत्पिबतोऽपि मद्यपायीन्निति क्लेशपरम्परा स्यात् ।
पिबन्ति मद्यं तदपि प्रणिन्द्यं क्रव्येण यास्ताः किमु कीर्तनीयाः ॥

अर्थ– दुसरोंके बुलानेसे जो मद्यपान करते हैं वे भी कष्ट उठाते हैं। फिर जो शिवकी शक्तियां मांसके साथ उसी निन्दनीय मद्यको पीती हैं उनके सम्बन्धमें क्या कहा जाये? ॥ १०८ ॥

मान्यैर्महाश्रीरपि मातरोऽपि श्मशानवासिन्यपि मारिकाद्याः ।
कन्या न मान्या जनकाद्यवश्याः स्वैरं चरन्त्यो विमुखा विवाहात् ॥

अर्थ– महाश्री, श्मशानवासिनी, मारिकादि जो मातायें हैं वे मान्योंके द्वारा मान्य नहीं हैं। क्यों कि वे स्वच्छंदसे विहार करती

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हैं और विवाहसे विमुख हैं। जो कन्यायें पिता, माता आदि वृद्ध जनोंके वश नहीं हैं वे मान्यताको प्राप्त नहीं होती हैं ॥ १०९ ॥

तृणं च धेनुर्महिषी जलं च भजत्यलं दोग्धि च स्वादुदुग्धम्[1] ।
धत्ते च कायं स्तनवद्विषाणौ तस्मात्ततोऽसौ भृशमर्चनीया ॥११०॥
तीर्थानि देवा मुनयश्च सर्वेऽप्येकत्र धेनौ यदि संवसन्ति ।
सैकैव मान्या परमस्तु नान्याः सर्वत्र चेत्स्युर्बत ते दिताङ्गाः ॥१११
सर्वत्र सर्वेऽप्यथवा वसन्तु स्वावासभूताखिलधेनुकानाम् ।
बाधाः किमेते न निवारयन्ति दुःस्थोऽपि संरक्षति यत्स्वधाम ॥
ततो न गावो बुधमाननीयाः संगं जनन्याप्यनुजाङ्गजाभिः ।
कुर्वन्वृषोऽर्च्यः किमु पिप्पलश्चे[2] पूज्यो भवेत्किं सुफलो न चूतः ॥

अर्थ– गाय जो घास और पानी खाती है वहीं भैंसभी खाती है और गायसेभी स्वादिष्ट गाढा दूध देती है, तथा गायकी तरहही उसका शरीर, स्तन और सींग होते हैं। अतः भैंस गायसे अधिक पूज्य है ॥ ११०॥

अर्थ– सब तीर्थ, सब देवता और मुनि यदि एकही गायमें निवास करते हैं तो जिस एक गौमें वे सब निवास करते हैं वही गौ पूज्य होनी चाहिये। अन्य नहीं। और यदि वे सब गायोंमें निवास करते हैं तो प्रत्येक गायमें खण्ड खण्ड करके रहनेके कारण वे सब खण्ड खण्ड शरीरवाले हुए। अथवा सब देवता वगैरह सब गायोंमें रहे आओ। किन्तु वे सब अपने आवासभूत गायोंके कष्टोंको दूर क्यों नहीं करते; क्यों कि दरिद्रसे दरिद्र मनुष्यभी अपने निवासस्थानकी रक्षा करता है ॥ ११२ ॥ अतः समझदार मनुष्योंके लिये

१ ल. सान्द्रदुग्धम् । २ ल. श्चेत्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गाय पूज्य नहीं हो सकती। इसी तरह कुछ लोग बैलको और पीपलके पेड़को पूज्य मानते हैं। किन्तु बैल अपनी माता भगिनी और कन्याके साथ रमण करता है। अतः वह पूज्य नहीं हो सकता। तथा पीपल पूज्य है तो अच्छे २ फल देनेवाला आमका पेड़ पूज्य क्यों नहीं है ?॥ ११३ ॥

मान्यान्यथेमान्यपि ये वदन्ति, तेऽप्यन्यवत्क्ष्मावकरापगासु।
क्षिपन्ति किं केशपुरीषमूत्रोच्छिष्टास्रपूयास्थ्यजिनामिषाणि॥ ११४

अर्थ– जो लोग पृथ्वी, नदी वगैरहकोभी पूज्य मानते हैं, वे दूसरे लोगोंकी तरह नदी वगैरहमें बाल, टट्टी, पेशाब, जूठन, रुधिर, पीव हड्डी, चमडा और मांस वगैरह क्यों फेंकते हैं ? ॥ ११४ ॥

उल्लङ्घ्य यान्त्यम्बुधिदेहलीश्चारोहन्ति शैलद्रुमवाहनानि।
दहन्ति रत्नान्यशनान्यदन्ति पिबन्ति दुग्धोदककाञ्जिकानि॥ ११५

अर्थ– जो समुद्र देहली वगैरहको पूज्य मानते हैं वे समुद्र और देहलीको लांघकर जाते हैं। पहाड, वृक्ष और सवारीपर चढते हैं, रत्नोंको जलाते हैं, भोजन खाते हैं, और दूध, पानी तथा कांजी पीते हैं (?)॥ ११५ ॥

इति प्रसंगादपृथक्[1] तदाप्ताभासादिरूपं परमाज्यरुच्यम्[2]।
आप्तादिरूपं प्रकृतं प्रवक्ष्याम्यथाच्छदृष्ट्यादिकपञ्चकाप्तैः॥ ११६ ॥

अर्थ– इस प्रकार प्रसंगवश जानकारोंके लिये रुचिकर तथा सच्चे देवादिकोंके समान दीखनेसे अपृथक् अभिन्न दीखनेवाले आप्ताभास वगैरहका स्वरूप कहा। अब मैं पञ्च परमेष्ठीके कथन को लिये हुए प्रकृत आप्त वगैरहका स्वरूप कहता हूं॥ ११६ ॥

१ ल. दपृथुक् २ ल. परमज्ञरुच्यम्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आप्तोऽर्थतः स्यादमरागमाद्यैरच्छाङ्कताद्यैरपि भूष्यमाणः।
तीर्थङ्करश्छिन्नसमस्तदोषावृतिश्च सूक्ष्मादिपदार्थदर्शी ॥ ११७ ॥

अर्थ– जो तीर्थङ्कर--धर्मतीर्थका प्रवर्तक है, जिसने समस्त दोषोंको और आवरणोंको नष्ट कर दिया है, जो सूक्ष्म परमाणु वगैरह पदार्थोंको जानता देखता है, जिसके समवसरण (उपदेशसभा) में देवता आते हैं और जो परम औदारिक शरीर आदि बाह्य विभूतियों-सेभी भूषित है वही वास्तवमें सच्चा आप्त है ॥ ११७ ॥

देवागमादीनि समीक्ष्य गत्वा मायाविनं तत्र न चाप्तभावम्।
दृष्टेत्थमन्यत्र विलोक्य तानि नासाविहापीति बुधैर्न वाच्यम् ॥

अर्थ– किसी मायावी–इन्द्रजालियेके पास जाकर और वहां देवोंका आगमन वगैरह देखकर यदि कोई यह कहे कि जैन तीर्थ-ङ्करके पास जो देवोंका आगमन वगैरह देखा जाता है वह भी जादू-गरीकी करामत है, वास्तविक नहीं है, तो समझदारोंको ऐसा नहीं कहना चाहिये ॥ ११८ ॥

अब तीर्थङ्कर शब्दका अर्थ बतलाते हैं—

निरीक्ष्य गोपालघटोत्थधूमं श्रित्वानलं तत्र समीक्ष्य नेत्थम्।
अभ्रंलिहं धूममनष्टमूलं दृष्ट्वात्र चासौ न यथा च वाच्यम् ॥११९

अर्थ– जैसे जादूगरके घडेमेंसे विना आगके ही निकलते हुए धुंएको देखकर और उसके बाद कहीं जमीनसे उठकर आकाश-तक छूनेवाले धारावाही धूमको देखकर समझदार मनुष्य यह नहीं कहता कि यह धुआंभी जादूगरके घड़ेसे उत्पन्न होनेवाले धूमकी

१ ल. दृष्टेत्थ

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तरह ही बनावटी है । वैसेही एक जगह बनावटी देवोंका आगमन देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि वह अन्यत्रभी बनावटी है ॥ ११९ ॥

गतिस्वभावोऽद्भुतमच्छतादि सुरेषु रागिष्वत एषु नैश्यम् ।
गुणोद्भवं यत्र तदस्ति पुंसि दुरापमस्मिन्नृभवेऽयमीशः ॥ १२० ॥

अर्थ– शायद कोई कहे कि शरीरकी स्वच्छता वगैरह तो देवोंमेंभी पाई जाती है किन्तु ऐसा कहना भी ठीक नहीं है; क्यों कि रागी देवोंमें जो स्वच्छता वगैरह है वह देवगतिमें जन्म लेनेके कारण है, मनुष्यभवमें यह बात नहीं है, मनुष्यभवमें जन्मसे परम औदारिक शरीर वगैरह का होना कठिन है अतः जिस पुरुषमें उसके गुणोंके कारण शारीरिक स्वच्छता वगैरह पाई जाती है वही आप्त है, अन्य नहीं ॥ १२० ॥

सन्मार्गसन्दर्शिवचोऽस्ति नाम्ना भवाम्बुधिं तारयतीति तीर्थम् ।
तस्यैव कर्ता भुवि तीर्थकर्ता न चेतरे तद्विपरीतवाचः ॥ १२१ ॥

अर्थ– सन्मार्गको बतलानेवाले वचनोंको तीर्थ कहते हैं क्यों कि वह संसाररूपी समुद्रसे पार उतारते हैं। उन वचनोंके कर्ताको अर्थात् जो वैसा उपदेश देता है उसको तीर्थङ्कर कहते हैं । अतः जिनके वचन संसारसमुद्रमें डुबानेवाले हैं वे तीर्थङ्कर नहीं कहे जा सकते ॥ १२१ ॥

अशेषदोषावृतिविप्रमुक्तः कोप्यस्ति हेमेव मलप्रमुक्तम् ।
हानिस्तयोरप्यतिशायनेन प्रवर्तते यन्मलयोर्यथैव ॥ १२२ ॥

अर्थ– शायद कहा जाये कि ऐसा कोई पुरुष नहीं है जिसके

१ ल. गतिस्वभावोद्भव.

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

समस्त दोष वगैरह नष्ट होगये हों, किन्तु ऐसा कहनाभी ठीक नहीं है, जैसे मलसे रहित शुद्ध स्वर्ण होता है वैसेही समस्त दोषों और आवरणोंसे मुक्त कोई महापुरुष अवश्य होता है; क्यों कि जिसमें हीनाधिकता पाई जाती है अर्थात् जो घटता और बढता रहता है वह कहीं पर बिल्कुल नष्ट हो जाता है। जैसे खानसे निकले हुए सोनेमें मैलकी पराकाष्ठा होती है फिर उपाय करनेसे वह घटते घटते एकदम क्षीण हो जाता है वैसेही हम लोगोंमें दोष और आवरण की हानि हीनाधिक पाई जाती है अतः किसी पुरुषमें उसका बिल्कुल अभाव हो जाता है ॥ १२२ ॥

इस प्रकार आप्तके अन्य गुणोंको सिद्ध करके अब उसकी सर्वज्ञताका समर्थन करते हैं—

तत्सूक्ष्मदूरान्तरिताः पदार्थाः कस्यापि पुंसो विशदा भवन्ति ।
व्रजन्ति सर्वेऽप्यनुमेयतां यदेतेऽनलाद्या भुवने यथैव ॥ १२३ ॥

अर्थ— संसारमें जो परमाणु वगैरह सूक्ष्म पदार्थ हैं, राम रावण वगैरह अतीत पदार्थ हैं, और हिमवान् वगैरह दूरवर्ती पदार्थ हैं, वे किसीके प्रत्यक्ष अवश्य हैं; क्यों कि इन सभी पदार्थोंको हम अनुमानसे जानते हैं। जो पदार्थ अनुमानसे जाना जा सकता है• वह किसीकेद्वारा प्रत्यक्षभी देखा जाता है। जैसे पहाड़में छिपी हुई अग्निको हम दूरसे उठता हुआ धुआं देखकर अनुमानसे जानते हैं और पीछे उसे प्रत्यक्षसे जान लेते हैं ॥ १२३ ॥

इति प्रमाणेन समर्थितो यस्त्रिलोकनाथैरपि सेव्यमानः ।
आप्तः स वर्यो जगति त्रिभेदे काले च तस्याज्जिन एक एव ॥१२४

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ– इस प्रकार जिस आप्तका समर्थन प्रमाणके द्वारा होता है, और त्रिलोकोंके स्वामी इन्द्र चक्रवर्ती वगैरह जिसकी सेवा करते है वही आप्त तीनों कालों और तीनों लोकोंमें श्रेष्ठ है तथा वह जिनेन्द्र भगवानही हैं ॥ १२४ ॥

तस्यैव यत्सम्भवतीह तथ्यः सुरागमोऽभ्रे गमनं जनेज्या ।
जयस्वनो रत्नसभा गणास्ते भामण्डलं दुन्दुभिदिव्यनादौ ॥ १२५
अशोकवृक्षः सुरपुष्पवृष्टिः षष्टिश्च चत्वारि च चामराणि ।
जगत्त्रयैकाधिपतित्वचिह्नं, सितातपत्रत्रयसिंहपीठम् ॥ १२६ ॥
गुणोद्भवा निर्मलता च नित्यं निःस्वेदतानेकसुलक्षणत्वम् ।
विलोचनासेचनकं सुरूपं सुगन्धिता निन्दितकैणनाभिः ॥ १२७ ॥
जगत्त्रयीमप्यतथा विधातुं पटीयसी काचन दिव्यशक्तिः ।
निमेषदूरोज्ज्वलफुल्लनीलनीरेजलज्जाकरनेत्रयुग्मम् ॥ १२८ ॥

अर्थ– उन्हींके समवसरणमें सचमुचके देवोंका आगमन होता है, वेही आकाशमें गमन करते हैं, उनकी सब लोग पूजा करते हैं, जय जय नाद करते हैं, उनकी रत्नमयी सभा होती है, अनेक गण होते हैं, सिरके चारों ओर भामण्डल होता है, दुन्दुभि बजती है, दिव्यध्वनि खिरती है, अशोकवृक्ष होता है, देव पुष्पोंकी वर्षा करते हैं, देवता चौसठ चमर ढोरते हैं, वे सिंहासनके ऊपर विराजते हैं, उनके सिरपर तीन श्वेत छत्र रहते हैं जो इस बातको सूचित करते हैं कि भगवान् तीनों लोकोंके स्वामी हैं; उनके गुणोंके कारण उनमें निर्मलता प्रकट होती है, उन्हें कभीभी पसेव नहीं आता तथा अन्यभी अनेक सुलक्षण उनमें पाये जाते हैं, उनका रूप इतना सुन्दर होता है कि उसे देखकर आंखें कभी तृप्त नहीं होतीं, उनके

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शरीरकी सुगन्धि कस्तूरीकी गन्धकोभी मात करती है। और तीनों लोकोंकोभी बदलनेमें अत्यन्त प्रवीण ऐसी कुछ अपूर्व शक्ति उनमें है, तथा निमेषसे दूर उनके नेत्रयुगल खिले हुए नीलकमलको लजाते हैं ॥ १२५-२८ ॥

संसारदुःखातपतप्यमानसमस्तसत्त्वच्छलसस्यपुष्टेः ।
निदानमच्छात्मयथार्थवादितीर्थामृतस्यन्दनमद्वितीयम् ॥ १२९ ॥

अर्थ– जिनेन्द्र निर्मल आत्मावाले, यथार्थवादी, तीर्थरूपी अमृतके अपूर्व प्रवाह हैं, जो संसारके दुःखरूपी आतपसे सन्तप्त समस्त प्राणियोंके व्याजसे धान्यकी पुष्टिमें कारण है ॥ १२९ ॥

संसारितासूचकरागरोषमोहादिदोषप्रकटस्य सत्त्वे ।
सर्वत्र सत्ता पिशुनाम्बुजाक्षीशस्त्राक्षमालाधरणाद्यभावः ॥ १३० ॥

अर्थ– समस्त प्राणियोंमें संसारीपनेके सूचक राग, क्रोध, मोह आदि दोषोंके समूहकी सत्ता पाई जाती है। किन्तु जिनेन्द्रदेवमें ये दोष नहीं है। इसीलिये न तो उनके पास किसी दुर्जनका आवास है, न स्त्री है, न वे शस्त्र रखते हैं, और न रुद्राक्षकी माला वगैरहही पहिनते हैं ॥ १३० ॥

कैरैरिनस्येव समीरणेन ध्यानेन[1] सर्वावरणेऽवधूते ।
स्वयं प्रमाणैरपि सूक्ष्मदूराद्यर्थालियाथात्म्यनिवेदकत्वम् ॥ १३१ ॥

अर्थ-- जैसे हवाके द्वारा सूर्यके ऊपरसे मेघपटलका आवरण दूर हो जाने पर उसकी किरणोंसे सूक्ष्म और दूरवर्ती पदार्थोंको ठीक ठीक दिखलाती हैं, वैसे ही ध्यानके द्वारा ज्ञानावरण आदि कर्मोंके

१ ल. ध्यातेन सर्वावरणेऽवधूते ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नष्ट होजानेपर जिनेन्द्रदेव स्वयं अपने ज्ञानके द्वारा सूक्ष्म और दूरवर्ती पदार्थोंके यथार्थ स्वरूपको बतलाते हैं ॥ १३१ ॥

आच्छिद्य दोषानपि घातिकर्माण्याढ्यो विभूत्यातिशयैश्च सर्वम् ।
जानात्ययं पश्यति निश्चिनोति शास्तेत्यनन्तं शमनन्तशक्तिम् ॥१३२

अर्थ– अन्तरंग दोषोंको और बाह्य घातिकर्मोंको नष्ट करके वह जिनेन्द्रदेव बाह्य और अन्तरंग विभूति तथा अतिशयोंसे सम्पन्न होकर सबको जानते हैं, सबको देखते हैं और अनन्तसुख तथा अनन्तवीर्यको अपनाते हैं ॥ १३२ ॥

इति श्रियोऽस्यातिशया गुणाश्च यत्सन्ति दोषावृतयो न सन्ति ।
अश्रीगुणोद्घातिशयेषु देवेष्वयं सदोषावरणेष्वगण्यः ॥ १३३ ॥

अर्थ– इस प्रकार जिनेन्द्रदेवमें आत्मिक लक्ष्मी है, गुण हैं और अतिशय हैं, किन्तु दोष और आवरण नहीं हैं। अतः दोष और आवरणवाले तथा उत्तम लक्ष्मी, उत्तम गुण और उत्तम अतिशयोंसे रहित देवोंमें उनकी गणना नहीं की जा सकती ॥ १३३ ॥

शिवादिकेभ्यो जिन एव मान्यस्त्यक्तोपधिः शीलनिधिश्च तत्स्यात् ।
सन्त्यक्तसंगं समुपात्तशीलं मान्यं परेभ्यो मनुते जगद्यत् ॥ १३४ ॥

अर्थ– जिनदेवने समस्त परिग्रहको छोड दिया है और वे शीलके भण्डार हैं अतः शिव आदि देवताओंसे वही पूज्य हैं। क्यों कि यह जगत् परिग्रहको छोडनेवाले और शीलका पालन करनेवाले व्यक्तिको दूसरोंसे पूज्य मानता है ॥ १३४ ॥

भजन्त्यभिज्ञा जिनमेव भक्त्या भवादिकानेव जडा भजन्ति ।
सुवर्णमेवाददते हि सूता धूलीरिहैवाददते जलौघाः ॥ १३५ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ– ज्ञानी पुरुष जिनदेवकोही भक्तिपूर्वक पूजते हैं और मूर्ख मनुष्य शिव वगैरहकीही आराधना करते हैं। ठीकही है, इसी लोकमें पारद सुवर्णकोही ग्रहण करता है तथा पानीका समूह धूलीको ग्रहण करता है ॥ १३५ ॥

अज्ञैः कृतामप्यनलं ग्रहीतुं महां जिनस्यानतिमन्यदेवाः।
अन्येऽलमानीतमपीह चौरैरर्हं सुराज्ञो मुकुटं न धर्तुम् ॥ १३६ ॥

अर्थ– यद्यपि अज्ञानी जन अन्य देवोंको नमस्कार करते हैं किन्तु वास्तवमें नमस्कारके अधिकारी जिनेन्द्रदेवही हैं अतः अज्ञानी जनोंके द्वारा नमस्कार किये जानेपरभी अन्य देव जिनेन्द्रदेवकी नमस्कृतिको धारण नहीं कर सकते। जैसे राजाके योग्य मुकुटको चोर चुराभी लायें तौभी उसे दूसरे लोग धारण नहीं कर सकते ॥ १३६ ॥

सुधांशुबिम्बे तमसेव शुद्धे सुखावहे श्रीजिनशासनेऽस्मिन्।
छन्नेऽपि कालात्परशासनेन सतामुपास्यं हि तदेतदेव ॥ १३७ ॥

अर्थ– जैसे शुद्ध और सुखदायी चन्द्रमाका बिम्ब अन्धकारसे ढक जाता है वैसेही शुद्ध और सुखदायी यह जिनधर्म यद्यपि कलि-कालके प्रभावसे अन्य धर्मोंके द्वारा ढांक दिया गया है, फिरभी सज्ज-नोंको इसीकी आराधना करना चाहिये ॥ १३७ ॥

सिंहासनं यत्र सितातपत्रं गुणाश्च सन्तीह न सन्ति दोषाः।
स एव राजा सकलोर्वरायां लोकेश्वरस्तज्जिन एव तादृक् ॥ १३८ ॥

अर्थ– जिसमें सिंहासन, श्वेत छत्र और गुणोंका आवास है, तथा दोष नहीं हैं, समस्त पृथ्वीमें वही राजा लोकका स्वामी होता है और ऐसे जिनेन्द्रदेवही हैं ॥ १३८ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

देवद्रुमो वा जिन एव दत्ते दानस्य बुद्धया रहितोऽपि सम्यक् ॥
स्वकीयपादाश्रयतुष्टिभाजे समस्तसत्त्वाय सदेप्सितानि ॥ १३९ ॥

अर्थ– कल्पवृक्षकी तरह दान देनेकी भावनासे रहित होनेपरभी जिनेंद्रदेवही अपने चरणोंका आश्रय पाकर सन्तुष्ट हुए समस्त प्राणियोंको सदा इच्छित वस्तुओंको देते हैं ॥ १३९ ॥

संसारकक्षे बहुदुःखदावे गोवर्त्मवद्भ्रान्तिदकोटिमार्गे ॥
चङ्क्रम्यमाणाखिलसत्त्वमेकं ततो नयेन्मुक्तिपथं स एव ॥ १४०

अर्थ– इस संसाररूपी वनमें दुःखरूपी भयानक आग लगी हुई है, और गायोंके जानेके रास्तेकी तरह इसमें भ्रममें डालनेवाले करोड़ो मार्ग हैं। उसमें भटकनेवाले समस्त प्राणियोंको एक जिनेंद्रदेवही मुक्तिके मार्गपर ले जानेमें समर्थ है ॥ १४० ॥

आस्थायिकानावमतुल्यमानस्तम्भोरुदण्डामधिरोह्य सत्त्वान् ।
स एव संसारमहाम्बुराशेः सौख्यास्पदं धाम नयत्यभीष्टम् ॥१४१॥

अर्थ–जिसमें अनुपम मानस्तंभरूपी विशाल मस्तूल खड़ा है, उस समवसरणरूपी नावपर चढाकर जिनेन्द्रही प्राणियोंको संसाररूपी समुद्रसे पार उतारकर इच्छित सुखकर स्थानको ले जाते हैं ॥१४१॥

मिथ्यात्वधर्मप्रभवादतत्त्वमरीचिकानुद्रवखेदभारात् ।
निवर्तयत्यङ्गिमृगानिवाब्दः स एव तत्त्वामृतवर्षणेन ॥१४२॥

अर्थ– जैसे मेघ जलकी वृष्टि करके जल समझकर मरीचिकाकी ओर दौड़नेवाले हरिणोंको व्यर्थके कष्टसे बचाता है वैसेही जिनेंद्रदेव तत्त्वरूपी अमृतकी वर्षा करके मिथ्यात्वके प्रभावसे अतत्त्वोंकी ओर दौड़नेवाले प्राणियोंको उस व्यर्थके क्लेशसे बचाते हैं, अर्थात् उनका उपदेश सुनकर प्राणी मिथ्याधर्मकी ओर नहीं जाते ॥१४२॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

द्रव्येषु सत्स्वप्यखिलस्य जन्तोर्विपर्ययानध्यवसायशङ्काः।
तन्वन्निरस्यैव तमो यथावत्सन्दर्शयत्यर्कवदेष तानि ॥१४३॥

अर्थ– जैसे सूर्य अन्धकारको दूर करके वर्तमान वस्तुओंका ठीक ठीक प्रकाशन करता है वैसेही जिनेंद्रदेव मौजूदा पदार्थोंमेंभी समस्त प्राणियोंको होनेवाले विपरीत, अनध्यवसाय और संशयको दूर करके उन पदार्थोंका जैसाका तैसा ज्ञान कराते हैं ॥

भावार्थ– जो ज्ञान कुछका कुछ जानता है उसे विपरीत ज्ञान कहते हैं, जैसे सीपको चांदी और रस्सीको सांप समझ लेना। 'कुछ होगा' इस प्रकारके ज्ञानको अनध्यवसाय कहते हैं और दूरसे अंधेरेमें खड़े हुए किसी पदार्थको देखकर 'यह पुरुष है या ठूंठ' इस प्रकारके ज्ञानको संशय कहते हैं। ये तीनों मिथ्याज्ञान हैं। क्योंकि सामने वर्तमान वस्तुका ठीक ठीक ज्ञान नहीं कराते ॥१४३

भव्या भवाम्भोनिधिपारगं तं भजन्तु भक्त्या भवदुःखशान्त्यै ॥
ताक्ष्यं यथा तापितसर्वसर्पं सर्पाभिभीता[1] भुवि संश्रयन्ति ॥ १४४ ॥

अर्थ– जैसे लोकमें सर्पसे भयभीत प्राणी समस्त सापोंको त्रास देनेवाले गरुड़की शरणमें जाते हैं, वैसेही भव्य जीवोंको सांसारिक दुःखोंकी शान्तिके लिये, संसाररूपी समुद्रको पार करनेवाले उस जिनेन्द्रदेवकीही भक्तिपूर्वक आराधना करनी चाहिये ॥ १४४ ॥

हिमार्तिभीता[2] इव वह्निमेव छायामिवैवातपतप्यमानाः ॥
भजन्तु भव्या भवदुःखभीता भक्त्या भवासातरिपुं तमेव ॥ १४५ ॥

अर्थ– जैसे शीतकी पीड़ासे भीत मनुष्य आगकाही सेवन करते हैं और सूर्यके घामसे पीडित मनुष्य छाया का सेवन करते हैं

१ ल. सर्पार्तिभीता भुवि संसजन्ति २ ल. हिमातिभीता

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वैसेही संसारके दुःखोंसे डरे हुए प्राणियोंको सांसारिक दुःखोंके शत्रु उन जिनेंद्रदेवकी भक्तिपूर्वक आराधना करनी चाहिये ॥ १४५ ॥

श्रित्वादिमं तापमतेष्वबुद्धानाश्रित्य मूलाच्च भजत्स्वमुक्त्वा ।
छायाद्रुवत्तस्य न रुटपरागस्तथापि ते दुःखसुखास्पदानि ॥ १४६ ॥

अर्थ– ये लोग मेरे आश्रयमें आये हैं ऐसा न जानता हुआ-भी छायावृक्ष सूर्यतापसे पीडित हुए मनुष्यका ताप हटाता है। तथा जो लोग उसकी छायामें नहीं जाते हैं उनके संतापको नहीं हटाता है। लोकसंताप दूर करनेमें अथवा न करनेमें छायावृक्षको न रोष है और न तोष है वैसे जिनेश्वरको किसीके ऊपर न रोष है न राग है, तथापि लोग दुःख और सुखके स्थान होते हैं। अर्थात् जो जिनेश्वरकी भक्ति करते हैं वे सुखी होते हैं और जो उनमें द्वेषभाव रखते हैं वे दुःखी होते हैं ॥ १४६ ॥

तस्मिन्निदानीमिव सार्वभौमे देशे वसत्यप्यतिविप्रकृष्टे ।
चरन्ति एते सुखिनस्तदीयामाज्ञामनुल्लङ्घ्य परे सदुःखाः ॥ १४७ ॥

अर्थ– आजकलके समस्त पृथिवीके स्वामी चक्रवर्तीकी तरह उन जिनेन्द्रदेवके सुविस्तृत और सुदीर्घ क्षेत्रमें रहते हुए, जो उनकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं करते वे सुखपूर्वक विचरण करते हैं और जो ऐसा नहीं करते वे दुःख उठाते हैं ॥ १४७ ॥

जना गृहग्रामपुरीजनान्तषट्खण्डमात्रे प्रभुशासनं चेत् ।
उल्लङ्घयन्तोऽप्युरुदुःखभाजस्तात्किं पुनः सर्वजगत्प्रभोस्तत् ॥ १४८ ॥

अर्थ– जिस स्वामीका शासन घरतक, या ग्रामतक, या नगर-तक, या देशतक अथवा षट् खण्डपर्यंत है, यदि उसकी आज्ञाका उल्लं-

१ ल. तापमतेष्वबुद्ध्वा. २ ल. रुटच राग

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

घन करनेवाले मनुष्योंको घोर दुःख सहना पड़ता है तो समस्त जगत्के स्वामीकी आज्ञाका उल्लंघन करनेवालोंका तो कहनाही क्या है ? ॥ १४८ ॥

सतो हितं शास्ति स एव देवः सदार्प्यते शासनतत्फलेच्छा ।
कलस्वनं कर्णसुधारसौघं वमत्तयोर्वाद्यमपेक्षते किम् ॥ १४९ ॥

अर्थ– जिनेन्द्रदेवही भव्यजीवोंके हितका उपदेश देते हैं, किन्तु उनको शासन करने और उसके फलकी इच्छा नहीं रहती, अर्थात् उनका उपदेश निरीहवृत्तिसे बिना किसी इच्छाके होता है। ठीकही है, कानोंके लिये अमृतरसके प्रवाहके तुल्य मनोहर शब्द करनेवाला वीणादि वाद्य क्या उनकी अपेक्षा करता है ॥ १४९ ॥

श्रीमान् स्वयम्भूर्वृषभो जितात्मा कर्मारिरर्हन्नजितोऽकलङ्कः ।
जिनः शिवो विष्णुरजो जितारिरित्यादिसार्थामितनामधेयः ॥ १५० ॥

अर्थ-- उन जिनेन्द्रदेवके असंख्य नाम हैं और वे सब सार्थक हैं। अनन्त ज्ञान आदि रूप अन्तरंगलक्ष्मी और समवसरण आदि रूप बाह्य लक्ष्मीसे युक्त होनेके कारण वे श्रीमान् कहे जाते हैं। बिना किसीके उपदेशके स्वयंबुद्ध होकर उन्होंने आत्मकल्याणका पथ अपनाया था। इस लिये उन्हें स्वयंभु कहते हैं। धर्मसे भूषित होनेके कारण उन्हें वृषभ कहते हैं। आत्माको जीत लेनेसे वे जितात्मा कहे जाते हैं। कर्मोंके वैरी होनेसे उन्हें कर्मारि कहते हैं। सबसे अधिक पूजाके योग्य होनेसे उन्हें 'अर्हन्' कहते हैं। किसीके द्वारा पराजित न होनेसे उन्हें 'अजित' कहते हैं। दोषोंसे रहित होनेके

१ ल. सदाप्रते

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कारण उन्हें अकलंक कहते हैं। इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करलेनेसे वे 'जिन' कहे जाते हैं। सबके लिये कल्याणकारी होनेसे उन्हें शिव कहते हैं। अपने ज्ञानके द्वारा समस्त जगत् व्याप्त होनेके कारण वे विष्णु कहे जाते हैं। जन्ममरणके चक्रसे बाहर होनेसे उन्हें 'अज' कहते हैं। और कर्म शत्रुओंको जीत लेनेके कारण वे जितारि कहे जाते हैं ॥ १५० ॥

कल्याणकालेषु तथा स सद्योजातश्च वामश्च भवेदघोरः।
ईशान इन्द्रादिकृतोत्सवेषु क्रमेण वै तत्पुरुषश्च नाम्ना ॥ १५१ ॥

अर्थ– जन्मादि कल्याणकालोंमें अर्थात् जिन जब माताके उदरमें आये तब इंद्रने उन्हें 'सद्योजात' नाम दिया। जन्मके अनन्तर मेरुपर्वतपर क्षीरजलसे स्नान कराया तब इन्द्रने उनका 'वाम' नाम रखा। दीक्षाकालमें वे अघोर नामसे प्रसिद्ध हुए। केवलज्ञानके समय 'ईशान' और मोक्ष कल्याणके समय 'तत्पुरुष' नाम रख दिया है ॥ १५१ ॥

स्वर्गावतारं जननाभिषेकं निष्क्रान्तिमिद्धं निरपायबोधम्।
संप्राप्य धर्मं प्रतिपाद्य सार्वं भजेत्स पश्चात्परिनिर्वृतिं च ॥ १५२ ॥

अर्थ– स्वर्गसे अवतरण, जन्म अभिषेक, गृहत्यागकर जिनदीक्षा और कभी नष्ट न होनेवाले केवलज्ञानको प्राप्त करके तथा सबके लिये हितकर धर्मका उपदेश देकर उसके पश्चात् वह जिनेन्द्रदेव मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥ १५२ ॥

मुक्तोऽष्टभिः कर्मभिरष्टभिः स्वैर्गुणैरमुक्तः परिनिर्वृतोऽयम्।
आभाति मालिन्यविमुक्तदीधित्यमुक्तचामीकरभासुरात्मा ॥ १५३ ॥

१ ल. गणैरमुक्तः

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ– आठो कर्मोंसे मुक्त होकर तथा सम्यग्दर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य, सूक्ष्मत्त्व, अव्याबाधत्व, अगुरुलघुत्व और अवगाहनत्व इन आठ अपने गुणोंसे युक्त होकर वह मुक्त आत्मा मलिनतासे रहित और किरणोंसे सहित सोनेकी तरह चमकता हुआ शोभित होता है ॥ १५३ ॥

स्थितः स राजत्तलल्लोकहर्म्यस्याग्रे विभावाद्युदितै रसौघैः ।
पश्यन्भृतं संसृतिनाटकं स स्वस्थस्तरां चर्वति शर्म सान्द्रम् ॥१५४॥

अर्थ– जिसके नीचेका भाग नाना प्रकारके जीवोंसे शोभित है, उस लोकरूपी महलके अग्रभागमें स्थित हुआ वह मुक्तात्मा, विभाव आदि भावोंसे उत्पन्न श्रृंगार आदि रसोंसे भरे हुए इस संसार-रूपी नाटकको देखा करता है और आत्मनिष्ठ होकर अनन्तसुखका उपभोग करता है ॥ १५४ ॥

मनस्तमः स्वार्थविभासितेजा मदीयमस्येन्मणिदीपकल्पः ।
स्थितोऽपि दीप्रो मरुदन्तराले त्रिलोकचूडामणिरेष सिद्धः ॥१५५॥

अर्थ– तीनों लोकोंके मस्तकका मणिरूप वह सिद्धपरमेष्ठी मणिमय दीपकके समान है क्यों कि जैसे मणिदीपक स्वयं अपनाभी प्रकाशन करता है और अन्य पदार्थोंकाभी प्रकाशन करता है वैसेही सिद्धपरमेष्ठी केवलज्ञानके द्वारा अपनेकोभी प्रकाशित करते हैं और अन्य पदार्थोंकोभी प्रकाशित करते हैं। तथा जैसे मणिदीप हवाके बीचमेंभी बराबर प्रज्वलित रहता है वैसेही सिद्धपरमेष्ठी वातवलयमें विराजमान रहकर सदा सबको जानते देखते हैं। अतः मणिदीपके तुल्य वे सिद्धपरमेष्ठी मेरे मनमें स्थित अज्ञानरूपी अन्धकारको दूर करें ॥ १५५ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

असह्यदुःखावसथे भवेऽस्मिन्ननादिभूते भ्रमता कथञ्चित् ।
आप्तोऽयमामुक्ति मयास्तु नम्यः स्तुत्यश्च चिन्त्यस्तनुवाङ्मनोभिः॥१५६

अर्थ– असह्य दुःखोंसे भरे हुए इस संसारमें अनादि कालसे भ्रमण करते हुए जिस किसी तरह मुझे इस आप्तकी प्राप्ति हुई है। अतः जबतक मुझे मुक्तिकी प्राप्ति न हो तबतक मन, वचन और कायसे यही आप्त मेरे नमस्कार करनेके योग्य है, यही आप्त मेरी स्तुतिके योग्य है और यही आप्त मेरे ध्यान करनेके योग्य है॥ १५६ ॥

तस्यैव वाक्यं भवति प्रमाणं यथावदर्थप्रतिपादकस्य ।
प्रमीयते प्राज्ञजनैर्गुणानां वक्तुः सदा गौरवतो हि वाक्यम् ॥१५७॥

अर्थ– वह आप्त पदार्थका ठीक ठीक कथन करता है। अतः उसीका वचन-प्रमाण है। क्यों कि विद्वज्जन गुणी वक्ताके वचनोंको सदा गौरवसे मापते हैं ॥ १५७ ॥

पृष्टे सति न्याय इवाखिलेऽर्थे वक्तुः सभास्थस्य वचः प्रमाणम् ।
तदीययाथात्म्यविदोऽस्तरागद्वेषस्य रूढस्य च सत्यवाचा ॥ १५८ ॥

अर्थ– न्यायकी तरह सभी विषयोंके सम्बन्धमें पूछे जानेपर सभामें स्थित उसी वक्ताका वचन-प्रमाण माना जाता है, जो उस विषयकी असलियतको जानता है, और जिसे किसीसे राग वा द्वेष नहीं है तथा जो सत्य बोलनेमें पक्का होता है ॥ १५८ ॥

जितानृताङ्गाखिलरागरोषमोहादिकत्वाज्जिननामभाजः ।
तस्यैव वाचो विजितान्यवाचो भिनत्ति शैलान्शिरसा यथैव ॥१५९॥

१ ल. मोहाद्दितत्वाज्जिननामभाजः । २ ल. तस्यैव वाक् तद्विजितान्यवाचो भिनत्ति शैलान्भिदुरं यथैव.

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ– झूट बोलनेमें कारण समस्त राग, द्वेष, मोह वगरहको जीत लेनेसे जो 'जिन' कहे जाते हैं, उन्हींके वचन समस्त अन्य वचनोंको पराजित कर देते हैं, जैसे वज्र समस्त पर्वतोंको चूर चूर कर देता है ॥ १५९ ॥

अदोषिणस्तस्य वचोऽप्यदोषि स्याद्दोषिणोऽन्यस्य वचोऽपि दोषि ।
शुद्धेन्दुकान्तस्य जलं च शुद्धं दुष्टाजिनस्येव जलं च दुष्टम् ॥१६०॥

अर्थ– जिनेन्द्रदेव निर्दोष होते हैं, इसलिये उनका वचनभी निर्दोष होता है। अन्य देवता सदोष हैं इससे उनका वचनभी सदोष है। ठीकही है, शुद्ध चन्द्रकान्त मणिसे झरनेवाला जल शुद्ध होता है और अशुद्ध चमडेका मशकका जल अशुद्ध होता है॥१६०॥

तस्याङ्गिनां मातुरिवौरसानां सपत्निकानामिव वाक्परेषाम् ।
सुधेव पाके कटुवत्तदात्वे क्रमेण हालाहलवत्सुधावत् ॥ १६१ ॥

अर्थ– प्राणियोंके लिये उस निर्दोष आप्तका वचन वैसाही होता है जैसा अपने पेटसे जन्म लेनेवाले पुत्रोंके लिये माताका वचन। जो उस समय तो कडुआ लगता है किन्तु बादको अमृतके तुल्य लाभदायक प्रतीत होता है। तथा अन्य लोगोंका वचन सापत्न-माताओंके तुल्य होता है, जो उस समय तो अमृतकी तरह मीठा लगता है किन्तु बादको हलाहल विषकी तरह प्राण ले लेता है ॥१६१

वाण्येव जैनी मणिदीपिकेव निरस्य दुर्वादिवचस्तमांसि ।
व्यनक्ति लोकत्रितये यथावत्स्यात्कारमुद्राङ्कितवस्तुजातम् ॥१६२॥

अर्थ– अतः जिनवाणीही यथार्थ वाणी है, जो रत्नमयी दीपि-काकी तरह दुर्वादियोंके वचनरूपी अन्धकारको दूर करके तीनो

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

लोकोंमें स्याद्वादकी मुद्रासे चिह्नित समस्त वस्तुओंको ज्यों का त्यों बतलाती है ॥ १६२ ॥

शास्त्रं हितं शास्ति भवाम्बुराशेर्यत्त्रायते चार्हतमेव वाक्यम् ।
यदागमश्चागमयत्यशेषं वेदश्च यद्वेदयतीह वेद्यम् ॥ १६३ ॥

अर्थ– अतः अर्हन्तदेवका वचनही 'शास्त्र' कहे जानेके योग्य है क्यों कि 'शास्त्र' शब्द 'शास्' और 'त्र' दो धातुओंसे बना है, जिनमेंसे पहलीका अर्थ उपदेश देना और दूसरीका अर्थ है रक्षा करना और वह हितका उपदेश देता है और संसारसमुद्रसे रक्षा करता है। तथा वही आगम है क्यों कि वह सबका ज्ञान कराता है और वही वेद है क्यों कि जो कुछ जानने योग्य है उसका ज्ञान कराता है ॥ १६३ ॥

तत्रैव सूक्तं पुरुषादितत्त्वं श्रद्धेयमल्पैः सहसाज्ञयैव ॥
बुद्ध्वैव वृद्धैस्तु नयानुयोगन्यासैः श्रुतैः सम्यगवेत्य भव्यैः ॥१६४॥

अर्थ– उसी शास्त्रमें आत्मा आदि तत्त्वोंका सुन्दर कथन है, जो अल्पज्ञानी हैं उन्हें तो उसे जिन भगवानकी आज्ञा समझकर बिना विचारेही उसका श्रद्धान करना चाहिये किन्तु जो ज्ञानवृद्ध हैं उन्हें नय, अनुयोग और निक्षेपकेद्वारा जानकरही उस कथनका श्रद्धान करना चाहिये। और भव्य जीवोंको शास्त्रोंकेद्वारा भली प्रकार जानकर उसका श्रद्धान करना चाहिये ॥ १६४ ॥

अब आत्मतत्त्वका कथन करते हैं—

तत्रात्मतत्त्वं सहजोपयोगि स्वोपात्तदेहोन्नतिकर्तृभोक्तृ ।
विसर्पसंहारवदूर्ध्वगामि सिद्धं भवस्थं स्थितिजन्मनाशि ॥ १६५ ॥

अर्थ– जैनशास्त्रमें कहा है कि आत्मतत्त्व स्वाभाविक ज्ञान और दर्शनसे युक्त है, कर्मोंके कारण उसे जैसा शरीर मिलता है

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उसीके प्रमाण हो जाता है, अर्थात् यदि छोटा शरीर मिलता है तो सकुच कर उसी शरीरके बराबर हो जाता है और यदि बड़ा शरीर मिलता है तो फैलकर उसीके बराबर हो जाता है। तथा वह स्वयंही अपने कर्मोंका कर्ता है और स्वयंही उनके फलका भोक्ता है। उसका स्वभाव ऊपरको जानेका है। उसके दो भेद हैं- एक संसारी और एक मुक्त। तथा वह उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य स्वभाववाला है, अर्थात् उसमें प्रतिसमय पहली पर्यायका नाश होता रहता है, नई पर्याय उत्पन्न होती रहती है और इस उत्पाद विनाशके होते हुएभी वह आत्माका आत्माही बना रहता है। जैसे मिट्टीके लौंदेका विनाश और घड़ेकी उत्पत्ति होनेपरभी मिट्टी कायम रहती है ॥ १६५ ॥

अमूर्तमन्योन्यकृतोपकारमनाद्यनन्तं स्वपरप्रकाशि।
सामान्यरूपं च विशेषरूपं समस्तकर्मत्रयसङ्गदूरम् ॥ १६६ ॥

अर्थ- वह आत्मा अमूर्तिक है- उसमें रूप, रस, गन्ध वगैरह नहीं पाये जाते। परस्परमें एक दूसरोंका उपकार करनाही उसका कार्य है, वह अनादि और अनन्त है, अर्थात् न उसका आदि है न अन्त होता है, सदासे है और सदा रहेगा। वह अपनेकोभी जानता है और दूसरे पदार्थोंकोभी जानता है। उसके दो रूप हैं एक सामान्य और एक विशेष। तथा वह समस्त कर्मोंके संसर्गसे दूर होता है। अर्थात् द्रव्यकर्म, भावकर्म तथा नोकर्मोंसे दूर हैं ॥ १६६ ॥

अस्त्रीत्वपुम्भावनपुंसकत्वमबालतायौवनवृद्धभावम्।
अमर्त्यतिर्यक्सुरनारकत्वमस्तैकताद्वित्वबहुत्वभेदम् ॥ १६७ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ-- वह स्त्रीपना, पुरुषपना और नपुंसकपनेसे रहित होता है, उसमें बालपन, जवानी और बुढ़ापा नहीं होता, न वह मनुष्य तिर्यञ्च, देव और नारक भावसे युक्त होता है, और न उसमें एकत्व द्वित्व और बहुत्वका भेद होता है ॥ १६७ ॥

अब अजीव तत्त्वका कथन करते हैं—

अजीवतत्त्वं शरसंख्यमत्र स्कन्धाणुभेदाद्द्विविधश्च षोढा ।
स्पर्शादिमान्यो भवति द्विरुक्तस्थूलादिभेदात्स तु पुद्गलः स्यात्॥१६८॥

अर्थ-- अजीव तत्त्व पांच हैं—पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल । उनमेंसे जिसमें स्पर्श, रस, गन्ध और रूप पाया जाता है उसे पुद्गल कहते हैं । उसके दो भेद हैं स्कन्ध और परमाणु । सबसे सूक्ष्म अविभागी पुद्गल द्रव्यको परमाणु कहते हैं । और दो तीन आदि संख्यात असंख्यात और अनन्त परमाणुओंके मेलसे जो बनता है उसे स्कन्ध कहते हैं । पुद्गलद्रव्यके छै भेद भी हैं— स्थूलस्थूल, स्थूल, स्थूल-सूक्ष्म सूक्ष्म-स्थूल, सूक्ष्म और सूक्ष्म-सूक्ष्म । जमीन पर्वत वगैरह स्कन्धोंको स्थूलस्थूल कहते हैं । घी, तेल, पानी आदि तरल स्कन्धोंको स्थूल कहते हैं । छाया, आतप वगैरहको स्थूल-सूक्ष्म कहते हैं । चक्षुके सिवा शेष चार इन्द्रियोंके विषय स्पर्श, रस, गन्ध और शब्दको सूक्ष्म स्थूल कहते हैं । कर्मरूप होनेके योग्य पुद्गल स्कन्धोंको सूक्ष्म कहते हैं । और परमाणुको सूक्ष्म-सूक्ष्म कहते हैं ॥ १६८ ॥

धर्मो झषस्येव जलं गतौ स्यात्स्वयं प्रवृत्तस्य गतेः सहायः ।
स्थितावधर्मः पथिकस्य तस्या[1]श्छायेव जीवस्य च पुद्गलस्य ॥१६९॥

१ ल. तस्य

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ– जैसे मछलीको चलनेमें जल सहायक होता है वैसेही स्वयं चलते हुए जीव और पुद्गलोंको जो चलनेमें सहायक होता है उसे धर्मद्रव्य कहते हैं। और जैसे पथिकको ठहरनेमें छाया सहायक होती वैसेही चलते हुए जीव और पुद्गलोंको ठहरनेमें जो सहायक होता है उसे अधर्मद्रव्य कहते हैं ॥ १६९ ॥

नित्यं स्थितं यच्चतुरस्रमेकं घनं नभोऽनन्तनिजप्रदेशम् ।
भावावगाहप्रदमस्ति तत्स्यादलोकलोकाम्बरभेदभिन्नम् ॥ १७० ॥

अर्थ-- जो समस्त द्रव्योंको अवगाह देता है उसे आकाश कहते हैं। वह आकाश नित्य है, अवस्थित है, सब तरफ फैला हुआ और विशाल है, अनन्त प्रदेशवाला है। उसके दो भेद हैं—लोकाकाश और अलोकाकाश। अनन्त आकाशके मध्यभागको, जिसमें जीव आदि सभी द्रव्य पाये जाते हैं, लोकाकाश कहते हैं। और लोकाकाशके बाहर सर्वत्र जो अकेला आकाशद्रव्य है उसे अलोकाकाश कहते हैं ॥ १७० ॥

भिन्ना मणीराशिवदेव लोकाकाशप्रदेशेष्वणवोऽतिसङ्ख्याः ।
ये सन्ति मुख्योऽर्थविवर्तहेतुः कालस्तदात्मा समयादिरन्यः ॥१७१॥

अर्थ-- लोकाकाशके प्रत्येक प्रदेशपर एक एक करके रत्नोंकी राशिकी तरह जुदे जुदे जो असंख्यात कालाणु स्थित हैं वह मुख्य कालद्रव्य है यह द्रव्य पदार्थोंके परिणमनमें सहायक है। तथा उसके निमित्तसे जो समय, मिनिट घड़ी, घंटा आदि पर्याय होती हैं वह व्यवहार काल है ॥ १७१ ॥

द्रव्याणि षड्जैनमतेऽत्र तेऽमी पञ्चास्तिकायाः परिहीणकालाः ।
अचेतना जीवमृते भवन्ति मूर्तेतराः पुद्गलमन्तरेण ॥ १७२ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ-- जैनधर्ममें छै द्रव्य माने गये हैं। उनमेंसे काल द्रव्यको छोड़कर शेषको पञ्चास्तिकाय कहते हैं। जीवके सिवाय शेष सब द्रव्य अचेतन हैं। और पुद्गलको छोड़कर बाकीके पांचो द्रव्य अमूर्तिक हैं ॥ १७२ ॥

अब आस्रवतत्त्वको कहते हैं—

येनात्मभावेन स कर्मयोग्यः कर्मत्वमागच्छति पुद्गलौघः ।
भावास्रवोऽसावशुभेक्षणादिर्द्रव्यास्रवः पुद्गलकर्मताप्तिः ॥ १७३ ॥

अर्थ-- आस्रवतत्त्वके दो भेद हैं– भावास्रव और द्रव्यास्रव। आत्माके जिस भावसे कर्मरूप होनेके योग्य पुद्गल स्कन्ध कर्मपनेको प्राप्त होते हैं उसे भावास्रव कहते हैं। जैसे बुरे भावसे किसीकी आर ताकना वगैरह। तथा पुद्गलोंका जीवके कर्मरूप होना द्रव्यास्रव है ॥ १७३ ॥

अब बन्धतत्त्वका कथन करते हैं—

कर्मात्मभावेन तदस्ति बद्धं योगादिना येन स भावबन्धः ।
क्षीराम्बुवच्चेतनकर्मसर्वप्रदेशसंश्लेषणमन्यबन्धः ॥ १७४ ॥

अर्थ– बन्धतत्त्वकेभी दो भेद हैं–भावबन्ध और द्रव्यबन्ध। आत्माके जिस योग आदि रूप भावसे कर्म बंधते हैं उसे भावबन्ध कहते हैं। और आत्मा तथा कर्मके प्रदेशोंका दूध पानीकी तरह परस्परमें बंध जाना द्रव्यबंध है ॥ १७४ ॥

अब संवरतत्त्वका कथन करते हैं—

येनास्रवः साधु निरुध्यतेऽङ्गिभावेन सद्दर्शनसंयमादिः ।
भावादिरिष्टो मम संवरःस्याद्द्रव्यादिकस्त्वास्रवसन्निरोधः ॥ १७५ ॥

अर्थ— संवरकेभी दो भेद हैं- भावसंवर और द्रव्यसंवर। आत्माके जिस सम्यग्दर्शन और संयमआदिरूपभावसे अच्छी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तरह कर्मोंका आस्रव रुक जाता है, वह मेरा प्यारा भावसंवर है। और आस्रवका रुकना द्रव्यसंवर है ॥ १७५ ॥

अब निर्जरातत्त्वको कहते हैं—

आत्मप्रदेशस्थितकर्म येन निरस्यतेंऽशेन मतो ममैषः ।
शुद्धोपयोगः स तु निर्जरा स्याद्भावादिरेनोगलनं परा सा ॥ १७६ ॥

अर्थ– निर्जराकेभी दो भेद हैं– भावनिर्जरा और द्रव्यनिर्जरा। आत्माके जिस शुद्धोपयोगरूपभावसे आत्माके प्रदेशोंके साथ बंधे हुए कर्म थोड़ा थोड़ा करके झरते हैं वह मुझे प्रिय भावनिर्जरा है और कर्मोंका झडना द्रव्यनिर्जरा है ॥ १७६ ॥

अब मोक्षतत्त्वका वर्णन कहते हैं—

स्यात्कृत्स्नकर्मक्षयहेतुरात्मभावः शरण्यो मम भावमोक्षः ।
स्याद्द्रव्यमोक्षो भवतीह जीवः कर्माष्टकात्यन्तपृथक्स्वरूपः ॥ १७७ ॥

अर्थ– मोक्षतत्त्वकेभी दो भेद हैं– भावमोक्ष और द्रव्यमोक्ष। आत्माका जो भाव समस्त कर्मोंके नष्ट होनेमें कारण होता है वह मेरा आश्रयदाता भावमोक्ष है और जीवका आठों कर्मोंसे अत्यन्त भिन्न हो जाना द्रव्यमोक्ष है ॥ १७७ ॥

तत्त्वोंके कथनका उपसंहार—

इत्युक्तमेतत्खलु सप्तभेदं तत्त्वं पदार्था नव यत्समेतम् ।
ताभ्यां निलीने निजबन्धतत्त्वे ये द्रव्यभावादिकपुण्यपापे ॥ १७८ ॥

अर्थ– इसप्रकार तत्त्वके सात भेदोंका कथन किया। इन सात तत्त्वोंमें पुण्य और पापको मिलादेनेसे नौ पदार्थ हो जाते हैं। किन्तु उनका अन्तर्भाव अपने अपने बन्ध तत्त्वमें हो जाता है, अर्थात् भाव-पुण्य और भाव पापका अन्तर्भाव अपने अपने भावबन्धमें हो जाता है

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

और द्रव्यपुण्य तथा द्रव्यपापका अन्तर्भाव अपने अपने द्रव्यबन्धमें हो जाता है ॥ १७८ ॥

श्रद्धानमस्यैव दुरापमुक्तं सम्यक्त्वमष्टाङ्गमपास्तदोषम् ।
आस्तिक्यसंवेगशमानुकम्पाविवर्धितं दत्तकुबोधशुद्धि ॥ १७९ ॥

अब सम्यग्दर्शनका कथन करते हैं—

अर्थ– इन्हीं सात तत्त्वोंके श्रद्धानको सम्यग्दर्शन कहते हैं। वह सम्यग्दर्शन आठ अंगसहित और पच्चीस दोषोंसे रहित होता है। आस्तिक्य, संवेग, प्रशम और अनुकम्पा भावसे पुष्ट उस सम्यक्त्वकी प्राप्ति होना अत्यन्त कठिन है। उसके होनेसे आत्मामें स्थित मिथ्याज्ञान शुद्ध होकर सम्यग्ज्ञान हो जाते हैं।

भावार्थ– सम्यग्दर्शनके आठ अंग हैं– इस लोकका भय, परलोकका भय, अत्राणभय, अगुप्तिभय, मरणभय, वेदनाभय और आकस्मिकभय इन सात भेदोंको छोड़कर तत्त्वार्थका श्रद्धान करना पहला निःशंकित अंग है। इसलोक और परलोकके भोगोंकी चाह नहीं करना निःकांक्षित अंग हैं। रत्नत्रयसे पवित्र आत्माओंके अपवित्र शरीरको देखकर ग्लानि न करना निर्विचिकित्सा अंग है। अर्हन्तको छोड़कर अन्य कुदेवोंके द्वारा कहे हुए धर्मका पालन न करना अमूढदृष्टि है। उत्तम क्षमा आदिके द्वारा आत्माके धर्मकी वृद्धि करना और चतुर्विध संघके दोषोंको प्रकट नहीं करना उपबृंहण या उपगूहन अंग है। धर्मके घातक कारण उपस्थित होनेपरभी धर्मसे च्युत न होना स्थितिकरण अंग है। जिन शासन और उसके अनुयायियोंसे सदा अनुराग रखना वात्सल्य है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रके द्वारा जैनशासनका प्रकाश करना प्रभावना अंग है। सम्यग्दर्शनके इन

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आठ अंगोंका अभाव, तीन मूढ़ता, छै अनायतनोंकी सेवा और आठ मद ऐसे पच्चीस दोष हैं। देव, शास्त्र और तत्त्वोंमें दृढ़ प्रतीतिका होना आस्तिक्य है। संसारसे डरते रहना संवेग है। रागादि दोषोंके उपशमको प्रशम कहते हैं। प्राणिमात्रका दुःख दूर करनेकी इच्छासे चित्तका दयामय होना अनुकम्पा है॥ १७९ ॥

उदेति हेतुद्वयतः सरागविरागभेदाद् द्विविधं त्रिभेदम्।
शमोत्थदृक्क्षायिकवेदकानीत्याज्ञादिभेदाद्दशधा तदेतत् ॥ १८०॥

अर्थ– वह सम्यग्दर्शन अन्तरंग और बहिरंग कारणोंसे अथवा निसर्ग और अधिगमसे उत्पन्न होता है। सराग और वीतरागके भेदसे उसके दो भेद हैं। उपशम, क्षय और क्षयोपशमसे उत्पन्न होनेके कारण उसके तीन भेद हैं– औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक या वेदक। तथा आज्ञा आदिके भेदसे उसके दस भेद हैं।

भावार्थ– सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिका अन्तरंग कारण तो दर्शन मोहनीय कर्मका उपशम, क्षय अथवा क्षयोपशम है। उसके होनेपर जो बाह्य उपदेशसे जीवादि तत्त्वोंको जानकर श्रद्धान होता है वह अधिगमज सम्यग्दर्शन है और जो बाह्य उपदेशके विना स्वयंही जीवादि पदार्थोंको जानकर तत्त्वार्थश्रद्धान होता है वह निसर्गज सम्यग्दर्शन है। ये दो भेद बाह्य उपदेशके मिलने न मिलनेकी अपेक्षासे हैं। और सराग वीतराग भेद सम्यग्दर्शनके धारी जीवोंकी अपेक्षासे हैं। दसवें गुणस्थानतकके जीव सराग होते हैं और उसके ऊपरके जीव वीतराग होते हैं। सरागोंके सम्यग्दर्शनको सराग सम्यग्दर्शन कहते हैं। यह सम्यग्दर्शन प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य भावको लिये हुए होता है। और वीतराग सम्यग्दर्शन

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आत्मविशुद्धिरूप होता है। अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, सम्यङ्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतियोंके उपशमसे औपशमिक सम्यक्त्व होता है। इन्हीं सातों प्रकृतियोंके क्षयसे क्षायिकसम्यक्त्व होता है। और अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व और सम्यङ्मिथ्यात्व इन सर्वघाति प्रकृतियोंके उदयाभावी क्षय तथा आगामी कालमें उदय आनेवाले उक्त प्रकृतियोंके निषेकोंका सदवस्थारूप उपशम और सम्यक्त्वप्रकृतिके उदय होनेपर क्षायोपशमिक अथवा वेदकसम्यक्त्व होता है। सम्यग्दर्शनके दस भेद इस प्रकार हैं– शास्त्राभ्यासके विना वीतरागकी आज्ञा मानकर जो श्रद्धान किया जाता है वह आज्ञा-सम्यक्त्व है। दर्शनमोहका उपशम होनेसे जिन भगवानकेद्वारा कहे हुए मोक्षमार्गमें श्रद्धान होना मार्गसम्यक्त्व है। तीर्थङ्कर आदि महापुरुषोंके चरित्रको सुननेसे जो श्रद्धान होता है उसे उपदेशसम्यक्त्व कहते हैं। आचारांग सूत्रको सुननेसे जो श्रद्धान होता है वह सूत्रसम्यक्त्व है। बीजाक्षरोंके द्वारा गहन पदार्थोंको जान लेनेसे जो श्रद्धान होता है वह बीजसम्यक्त्व है। संक्षेपसेही तत्त्वोंको जानकर जो श्रद्धान होता है वह संक्षेप-सम्यक्त्व है। द्वादशांगको सुनकर जो श्रद्धान होता है वह विस्तार-सम्यक्त्व है। आगमके वचनोंके विनाही किसी पदार्थके अनुभवसे होनेवाले श्रद्धानको अर्थ-सम्यक्त्व कहते हैं। अंगबाह्य और अंगप्रविष्टरूप सम्पूर्ण श्रुतका अवगाहन करनेपर जो श्रद्धान होता है वह अवगाढ़सम्यक्त्व है। और केवलज्ञानके द्वारा समस्त पदार्थोंको जानकर जो श्रद्धान होता है वह परमावगाढ़–सम्यक्त्व है ॥ १८० ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आसन्नभव्योत्तमभावकर्महानी च संज्ञित्वविशुद्धभावौ ।
सम्यक्त्वलाभान्तरहेतुरन्यो धर्मोपदेशातिशयेक्षणादिः ॥ १८१ ॥

अर्थ– निकट भव्यपना, अर्थात् शीघ्रही मोक्षको प्राप्त करनेकी योग्यता, सम्यक्त्वको रोकनेवाले मिथ्यात्व आदि कर्मोंका उपशम, क्षय अथवा क्षयोपशम, संज्ञीपना अर्थात् मनकी सहायतासे उपदेश आदिको ग्रहण कर सकनेकी योग्यता और विशुद्ध परिणामोंका होना ये चार सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिमें अन्तरंग कारण हैं। तथा सच्चे गुरुका उपदेश और जैनधर्मके अतिशयका दर्शन वगैरह बाह्य कारण हैं ॥

भावार्थ– सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिमें पांच लब्धियां कारण होती हैं। इस श्लोकके द्वारा ग्रन्थकारने उन्हींका स्वरूप दिखलाया है जैसे कर्महानिसे प्रायोग्यलब्धिका स्वरूप बतलाया है। संज्ञीपनेसे क्षयोपशम लब्धिका स्वरूप दिखाया है। विशुद्धभावसे विशुद्धि लब्धिको बतलाया है। उपदेशसे देशनालब्धिको बतलाया है। ये चार लब्धियां अभव्यकेभी हो सकती हैं। 'निकट भव्य' शब्दसे पांचवी करणलब्धि सूचित होती हैं क्यों कि यह लब्धि सम्यक्त्वके उन्मुख मिथ्यादृष्टि जीवकेही होती है। इसके होनेपर सम्यक्त्व अवश्य होता है ॥ १८१ ॥

देवाधिदेवो जिन एव देवस्तस्यैव तथ्यं वचनं च पथ्यम् ।
तदुक्त एवात्महितोऽस्ति धर्मो निर्बन्ध इत्येषु[1] सुसाधयेत्तत् ॥१८२॥

अर्थ– जिनदेवही देवोंकेभी देव हैं, उन्हींका वचन सत्य और पथ्य है, उनके द्वारा कहा गया धर्मही आत्माका हित करनेवाला है, इस प्रकारका अभिप्राय सम्यग्दर्शनके होनेपरही होता है ॥१८२॥

१ ल. इत्येष

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्याल्लोकमूढं सिकताश्मराशिः स्नानं नदीसिन्धुषु वह्निपातः ।
सन्ध्यारवीन्दुद्रुमशैलगोभूसद्माग्नियानायुधरत्नसेवा ॥ १८३ ॥

अब लोक-मूढ़ताका स्वरूप कहते हैं—

अर्थ- धर्म समझकर बालु और पत्थरोंके ढेरको पूजना, नदी और समुद्रमें स्नान करना, आगमें कूदना, सन्ध्या, सूर्य, चन्द्र, वृक्ष, पहाड़, गाय, भूमि, मकान, आग, सवारी, शस्त्र और रत्नोंकी पूजा करना लोकमूढ़ता है ॥ १८३ ॥

अब देवमूढ़ताका स्वरूप कहते हैं—

तद्देवमूढं यदिहाश्नुतीति वराभिलाषैर्विमतिर्वराकः ।
रागादिदोषात्रसथानि देवानशेषविस्त्यादिगुणैरयुक्तान् ॥ १८४ ॥

अर्थ- वरकी अभिलाषासे अज्ञानी मूढ़लोग यहांपर जो सर्वज्ञता आदि गुणोंसे रहित और रागादि-दोषोंसे भरे हुए देवोंकी पूजा करते हैं उसे देवमूढ़ता कहते हैं ॥ १८४ ॥

अब गुरुमूढ़ताका स्वरूप कहते हैं—

पाषण्डिमूढं भवकारणं स्यात्पाषण्डिनां सद्विविधोपधीनाम् ।
प्राणीन्द्रियासंयमिनां च मिथ्यादृग्ज्ञानचारित्रवतामुपास्तिः ॥१८५॥

अर्थ-- अन्तरंग और बाह्य परिग्रहसे सहित, प्राणि-संयम और इन्द्रियसंयमसे रहित, तथा मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्रके धारी साधुओंकी उपासना करना गुरुमूढ़ता है। यह मूढ़ता संसारका कारण है ॥ १८५ ॥

अब आठ मदोंको कहते हैं—

सम्भावयन्नप्रतिमैस्तपोधीसम्पद्बलार्चाकुलजातिरूपैः ।
स्वोत्कर्षमन्यस्य सधर्मणो वा कुर्वन्प्रधर्षं प्रदुनोति दृष्टिम् ॥१८६॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ– अपने अनुपम तप, अनुपम ज्ञान, अनुपम सम्पत्ति, असाधारण बल, अनुपम आदर-सत्कार, असाधारण कुल, असाधारण जाति और अनुपम रूपके मदमें चूर होकर अपना बड़प्पन जतानेवाला अथवा अन्य साधर्मी बन्धुओंका तिरस्कार करनेवाला सम्यग्दर्शनको हानि पहुचाता है ॥ १८६ ॥

अब छै अनायतनोंको कहते हैं—

त्रीण्यप्रशस्तेक्षणबोधवृत्तान्याहुर्जिनास्त्रीनपि तत्समेतान् ।
सम्यग्दृशोऽनायतनानि षट् च तत्सेवनं दृङ्मलमाशु मुञ्चेत् ॥१८७॥

अर्थ– मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र ये तीन, और तीन इनके धारक, इस तरह ये सम्यग्दर्शनके छै अनायतन हैं। इनकी सेवा करनेसे सम्यग्दर्शनमें दोष लगता है। अतः इन्हें तुरन्त छोड़ देना चाहिये ॥ १८७ ॥

सम्यग्दर्शनके आठ दोष—

शङ्का च काङ्क्षा विचिकित्सयामा मूढेक्षणत्वानुपगूहने च ।
स्थितिक्रियावत्सलभावधर्मप्रकाशनाशाश्च दृशोऽष्टदोषाः ॥ १८८ ॥

अर्थ– शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, मूढ़दृष्टिता, अनुपगूहन, स्थितिकरणका न करना, वात्सल्यभावका अभाव और धर्मका प्रकाश न होने देना ये आठ दोष सम्यग्दर्शनके हैं। अर्थात् सम्यग्दर्शनके आठ अंगोंके विरोधी ये आठ दोष हैं ॥ १८८ ॥

पहले निःशंकित अंगका स्वरूप—

सुखावहं तत्सुदृशोऽङ्गमाद्यमस्तीदमेवेदृशमेव तत्त्वम् ।
नान्यन्न चान्यादृशमित्यशेषेऽप्यत्रायसाम्भोवदकम्पनत्वम् ॥ १८९॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ– तत्त्व यही है और इसी प्रकार है, अन्य नहीं है और न अन्य प्रकारसेही है इस प्रकार समस्त तत्त्वोंके विषयमें तलवारकी धारके समान निश्चल श्रद्धान होना, सम्यग्दर्शनका प्रथम अंग है, जो सुखको देनेवाला है ॥ १८९ ॥

दूसरे निःकांक्षित अंगका स्वरूप—

पुण्यैकवश्योऽभ्युदयोऽत्र जन्तोरमुत्र चातोऽप्यभिमानमात्रम् ।
सुखं च तेनात्र न पौरुषं च तृष्णां च कुर्याद्यदि तद्द्वितीयम् ॥१९०

अर्थ– इस लोक और परलोकमें जीवको जो ऐश्वर्य प्राप्त होता है वह सब उसके पुण्यकर्मके आधीन है, उसमें सुख मानना कोरा अभिमान मात्र है। अतः उसकी प्राप्तिके लिये न तो उद्योग करना और न उसकी चाह करना दूसरा निःकांक्षित अंग है ॥ १९० ॥

तिसरे निर्विचिकित्सा अंगका स्वरूप—

बीजादिभिः स्यादशुचीदमङ्गमस्नानताशुद्धटकुत्स्यरूपम् ।
तद्वीक्ष्य भव्यः शमिनां प्रमोदे मग्नोऽश्नुतेऽल्पामपि किं जुगुप्साम्॥

अर्थ– यह शरीर रज, वीर्य वगैरहसे बना होनेसे एक तो स्वयंही अपवित्र है। फिर स्नान वगैरह न करनेसे तो इसकी कुरूपता औरभी अधिक बढ़ जाती है। अतः मुनिजनोंके घृणित शरीरको देखकर उनके गुणोंमें मग्न हुआ भव्य पुरुष क्या थोडीसीभी ग्लानि करेगा ? ॥ १९१ ॥

चौथे अमूढदृष्टि अंगका स्वरूप—

कायेन वाचा मनसा तु मिथ्यादृग्ज्ञानवृत्तेषु च तद्गुतेषु ।
करोति सम्पर्कमिह प्रशंसां न संमतिं चेति चतुर्थमेतत् ॥ १९२ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ– मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र तथा उनके धारी पुरुषोंसे सम्बन्ध नहीं रखना, उनकी प्रशंसा नहीं करना और न उनके पक्षमें सम्मति देना चौथा अमूढ़दृष्टि अंग है ॥ १९२ ॥

पांचवे उपगूहन अंगका स्वरूप—

स्वभावतोऽत्यन्तविशुद्धिभाजोऽप्यशक्तबालाश्रयवाच्यभावम् ।
मार्जन्ति मार्गस्य महानुभावा यदेतदुच्चैरुपगूहनं स्यात् ॥ १९३ ॥

अर्थ– स्वभावसेही अत्यन्त विशुद्ध जैनमार्ग (धर्म) की असमर्थ और मूर्ख जीवोंके कारण होनेवाली बदनामीको जो महानुभाव प्रयत्न करके दूर करते हैं उसे उपगूहन अंग कहते हैं ॥ १९३ ॥

छठे स्थितिकरण अंगका स्वरूप—

कुदृष्टिकृत्यां शुभदृष्टिमातुः कुवृत्तिकिंपाकवनं चलन्तम् ।
सुवृत्तकल्पद्रुवनात्प्रबोध्य तयोः पुनः स्थापयतीति षष्ठम् ॥ १९४ ॥

अर्थ– शुभदृष्टि-सम्यग्दर्शनरूपी माताको छोडकर मिथ्यादृष्टि-रूपी कृत्या-राक्षसीके पास जानेवाले साधर्मिकको, तथा सम्यक्चारित्र-रूपी कल्पवृक्षोंके वनसे मिथ्याचारित्रके तरफ जानेवाले साधर्मिक-जनको पुनः सम्यग्दृष्टि माताके पास और सम्यक्चारित्ररूपी कल्प-वृक्षके पास स्थापन करना स्थितिकरण अंग है ॥ १९४ ॥

भावार्थ– सम्यग्दर्शनसे तथा चारित्रसे साधर्मिक यदि भ्रष्ट हो तो उसको पुनः सम्यग्दर्शनमें और चारित्रमें स्थित करना उसे स्थितिकरण अंग कहते हैं ।

सातवें वात्सल्य अंगका स्वरूप—

यशांसि लाभाननपेक्ष्य पूजाः स्वदेशपक्षादिकमप्युपेक्ष्य ।
धर्मानुरागेण परं त्वमुच्चैर्वत्साहतेष्वातनु वत्सलत्वम् ॥ १९५ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ— यश, लाभ वगैरहकी अपेक्षा न करके तथा पूजा और स्वदेश आदिके पक्षकीभी उपेक्षा करके धर्मप्रेमवश हे वत्स, तुम जिनभक्त श्रावकोंमें और यतियोंमें प्रेम करो ॥ १९५ ॥

प्रभावना अंगका स्वरूप—

जिनोक्तविद्यादिषु यत्र शक्तिः स्वस्यास्ति तत्साधुतया प्रयोज्या ।
लोकेष्वपाकृत्य तदज्ञभावं प्रभावना तन्महिमप्रकाशः ॥ १९६ ॥

अर्थ— जिन भगवानकेद्वारा कही हुई विद्या, तप, दान, जिन-पूजा, वगैरहमेंसे जिसमें अपनी शक्ति हो उस शक्तिका अच्छी रीतिसे प्रयोग करके और जनतामें फैले हुए अज्ञानभावको दूर करके उसकी महिमा प्रकट करना प्रभावना अंग है ॥ १९६ ॥

सम्यक्त्वमङ्गैः सकलैः समग्रैः शुद्धैरमीभिः सुखसाधनैस्तैः ।
संयुक्तमेवातनुते स्वकृत्यं राज्यं शरीरं च यथा जगत्याम् ॥ १९७ ॥

अर्थ— जैसे लोकमें अपने अंगोंसे पूर्ण राज्यही शासन-कार्यमें सफल होता है, और सर्वाङ्गपूर्ण शरीरही अपना कार्य करनेमें सफलता प्राप्त करता है वैसेही सुखके साधन इन सम्पूर्ण निर्दोष अंगोंसे सहित सम्यक्त्वही अपना कार्य करता है ॥ १९७ ॥

आठों अङ्गोंमें प्रसिद्ध हुए व्यक्तियोंके नाम—

लोकेऽञ्जनोऽनन्तमतिः प्रसिद्धिमुद्दायनोऽङ्गेष्विव[1] रेवती[2] च ।
जिनेन्द्रभक्तोऽथ[3] सुवारिषेणो विष्णुश्च वज्रश्च गताः क्रमेण ॥ १९८ ॥

अर्थ— प्रथम निःशंकित अंगका पालन करनेमें अंजनचोर, दूसरे निःकांक्षित अंगका पालन करनेमें अनन्तमती, तीसरे निर्विचिकित्सा अंगको पालनेमें उद्दायन राजा, चौथे अमूढदृष्टि अंगको

१ ल. प्रसिद्धी २ ल. रु ३ ल. ऽप्सु

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पालनेमें रेवती रानी, पांचवे उपगूहन अंगको पालनेमें जिनेन्द्रभक्त सेठ, छठे स्थितिकरण अंगको पालनेमें वारिषेण, सातवें वात्सल्य अंगमें मुनि विष्णुकुमार और आठवें प्रभावना अंगमें वज्रकुमार लोकमें प्रसिद्ध हुए हैं ॥ १९८ ॥

आस्तिक्य आदिका स्वरूप—

आस्तिक्यमस्तीति समस्ततत्त्वं मतिर्भवक्लेशभयं द्वितीयः ।
आद्यक्रुधादिप्रलयः प्रशान्तिरशेषसत्त्वेषु कृपानुकम्पा ॥ १९९ ॥

अर्थ– जिनेन्द्र भगवानके द्वारा कहे हुए समस्त तत्त्व हैं इस प्रकारकी मतिको आस्तिक्य कहते हैं। संसारके कष्टोंसे भयभीत होना संवेग है। अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभका नष्ट होना प्रशम है। और समस्त प्राणियोंपर दया करना अनुकम्पा है ॥ १९९ ॥

सम्यग्दर्शनका माहात्म्य—

कालायसानीव रसानुषङ्गात्कल्याणतां त्रीणि सुदृष्टियोगात् ।
ज्ञानानि मिथ्यात्वमलीमसानि चिरन्तनान्यप्यचिरेण यान्ति ॥ २००

अर्थ– जैसे पारेके योगसे लोहा सोना हो जाता है वैसेही सम्यग्दर्शनके योगसे अनादिकालसे मिथ्यात्वसे मलिन हुए कुमति कुश्रुत और कुअवधिज्ञान तुरन्तही मति, श्रुत और अवधिज्ञान हो जाते हैं ॥ २०० ॥

असंयतोऽप्यच्छसुदृष्टिरङ्गी मिथ्यात्वभावैः खलु बन्धनीयम् ।
नपुंसकं नारकमायुरेतैराद्यैः कषायैरपि बन्धनीयम् ॥ २०१ ॥
स्त्रीवेदनीचैःकुलतिर्यगायुर्बध्नाति यद्वन्धनिमित्तहानिः ।
न स्वस्य तत्षण्डकनारकत्वं स्त्रीनीचतिर्यक्त्वमपि स्पृशेत ॥ २०२ ॥

१ ल. तद्बन्धनिमित्तहानेः ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ– निर्दोष सम्यग्दृष्टी जीव संयमका पालन न करनेपरभी मिथ्यात्वभावोंसे बंधनेवाले नपुंसक वेद और नरकायुको तथा अनन्तानुबन्धी कषायसे बंधनेवाले स्त्रीवेद, नीचगोत्र और तिर्यञ्चायुको नहीं बांधता। क्यों कि इन कर्मोंके बन्धमें निमित्त मिथ्यात्वभाव और कषाय है वह उसके नहीं होती। अतः सम्यग्दृष्टि जीव मरकर नपुंसक नहीं होता, नारकी नहीं होता, नीचगोत्रमें जन्म नहीं लेता और न तिर्यञ्चपर्यायमें जन्म लेता है ॥ २०२ ॥

ये श्वभ्रतिर्यङ्मनुजामरायुर्बन्धादुपर्याप्तसुदृष्टयस्ते ।
स्वल्पीकृतायुःस्थितिभोगभूमितिर्यग्नृकल्पानिमिषा भवन्ति ॥ २०३

अर्थ– किन्तु जो जीव नरकायुका बन्ध कर चुकनेके पश्चात् सम्यक्त्व ग्रहण करता है वह नरकमें तो अवश्य जाता है किन्तु उसकी नरककी आयु बहुत थोड़ी हो जाती है, जैसे राजा श्रेणिककी सातवें नरककी आयु घटकर पहले नरककी स्वल्प आयु रह गई थी। जो जीव तिर्यञ्चायु या मनुष्यका बन्ध कर चुकनेके पश्चात् सम्यक्त्व ग्रहण करता है वह मरकर उत्तम भोगभूमिका तिर्यञ्च अथवा मनुष्य होता है। और जो देवायुका बन्ध कर चुकनेके पश्चात् सम्यक्त्व ग्रहण करता है वह मरकर कल्पवासी देव होता है ॥ २०३ ॥

सम्यक्त्वसम्राजमुदारमेनं सज्ज्ञान[1]मन्त्रीद्धचरित्रसैन्यम् ।
संसेव्य सन्तः शमिताद्यदौस्थ्याश्चर्वन्त्यलभ्येषु पदेषु शर्म ॥ २०४

अर्थ– सम्यग्ज्ञानरूपी मंत्री और सम्यक्चारित्ररूपी सेनासे सम्पन्न इस महान् सम्यग्दर्शनरूपी साम्राज्यका सेवन करके, मिथ्यात्व और अनुन्तानुबधीं कषायका उपशम करनेवाले सज्जन पुरुष न प्राप्त होने योग्य पदोंको प्राप्त करके सुखका उपभोग करते हैं ॥ २०४ ॥

१ ल. श्रद्धान

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सज्जातिगार्हस्थ्यतपोधनत्वस्वाराज्यसाम्राज्यजिनत्वसिद्धिः ।
स्थानानि लोके परमाणि सप्त क्रमेण सद्दृष्टिरुपैत्यवश्यम् ॥ २०५

अर्थ– सज्जाति, सद्गृहस्थपना, तपोधनपना, स्वर्गका राज्य अर्थात् इन्द्रपद, साम्राज्य, अर्हन्तपद और मोक्षपद लोकमें ये सात स्थान उत्कृष्ट माने गये हैं। इन सप्त परमस्थानोंको सम्यग्दृष्टि क्रमसे अवश्य पाता है ॥ २०५ ॥

इन सात परमस्थानोंका स्वरूप—

सज्जातिरत्राशुभशिल्पविद्यासन्त्यक्तवृत्तौ सति जन्म वंशे ।
दिव्ये शिवानन्दनिदानदानदीक्षोचिते तीर्थकरादियोग्ये ॥ २०६ ॥

अर्थ– जिस कुलमें बढ़ईगिरी, लुहारी, गाना बजाना आदि कर्मोंसे आजीविका नहीं की जाती, अत एव जो मोक्षसुखके कारणभूत मुनिदान और मुनिदीक्षाके योग्य है, तथा जिसमें तीर्थङ्कर आदि महापुरुष जन्म ले सकते हैं, ऐसे दिव्य वंशमें जन्म लेनेका नाम सज्जातित्व है ॥ २०६ ॥

सद्दर्शनाचारवदान्यतार्थसौरूप्यशूरत्वकलादिशस्या ।
सागारता सान्द्रतराच्छकीर्तिसञ्छादिताशा भुवि सद्गृहित्वम् ॥२०७

अर्थ– सम्यग्दर्शन सम्यक् आचार, दानशीलता, सुन्दरता, शूरवीरता और कला आदि गुणोंसे प्रशंसनीय गृहस्थ होना और अपनी अति गम्भीर निर्मल कीर्तिसे दिशाओंको ढाक देना, इसीका नाम सद्गृहस्थपना है ॥ २०७ ॥

सदापि सन्यस्तसमस्तसङ्गा सद्दर्शनज्ञानतपश्चरित्रा ।
परिस्फुरन्ती मुनितास्ति पारिव्राज्यं यशोव्याप्तसमस्तविश्वा ॥ २०८

अर्थ– जीवन पर्यन्तके लिये समस्त परिग्रहको छोड़कर और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक् तपको धारण

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

करके जगमगाती हुई जिनदीक्षा लेना और अपने निर्मल यशसे समस्त विश्वको व्याप्त कर देना तपोधनत्व अथवा पारिव्राज्य नामक परमस्थान है ॥ २०८ ॥

स्वाराज्यमेतत्सुचिरं सभायां सुराङ्गनानां रमते सुराणाम् ।
जिनेन्द्रकल्याणकरः स सप्तानीकाणिमाद्यष्टगुणावधिर्यत् ॥ २०९ ॥

अर्थ– चिरकालतक देव और देवांगनाओंकी सभामें रमण करना, जिनेन्द्रदेवके पञ्चकल्याणकोंको सम्पन्न करना और सात प्रकारकी सेना तथा अणिमा आदि आठ गुण और अवधिज्ञान शोभित होना यही स्वाराज्य या इन्द्रत्व नामक परमस्थान है ॥ २०९ ॥

साम्राज्यमेतद् यदवत्यशेषां धात्रीं सहस्रैः सह षण्णवत्या ।
नारीभिरीशो नवभिर्निधानै रत्नैर्द्विसप्तैश्च षडङ्गसैन्यैः ॥ २१० ॥

अर्थ– छियानवें हजार स्त्रियां, नौ निधि, चौदह रत्न और छै अंगोंसे युक्त सेनाके साथ समस्त पृथ्वीका पालन करना साम्राज्य नामका परमस्थान है ॥ २१० ॥

जिनत्वमेतज्जितघातिकर्मा (धर्मा) श्रिताद्भुतानन्तचतुष्टयोऽर्हन् ।
अमर्त्यमर्त्यासुरयोगिनाथैराराधितः [1]स्नौत्यमृतं वृषं यत् ॥ २११ ॥

अर्थ– घातिकर्मोंको जीतकर और अनन्त चतुष्टयको प्राप्त करके, इन्द्र, चक्रवर्ती, असुरपति और गणधरोंसे पूजित अर्हन्तदेव जो धर्मामृतकी वर्षा करते हैं यही आर्हन्त्यनामक परमस्थान है ॥२११॥

विशुद्धरत्नत्रयपूर्णसेवा विध्वस्तकृत्स्नाष्टविभेदकर्मा ।
मग्ना सुखापारसुधाम्बुराशौ मान्याक्षयानन्तगुणा च सिद्धिः ॥२१२

अर्थ– निर्दोष और सम्पूर्ण रत्नत्रयके पालनसे समस्त आठ

---

१ ख्यात्यमृतं इति पाठः ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कर्मोंको नष्ट करके अविनाशी अनन्तगुणोंका पाना और अनन्त सुखके समुद्रमें मग्न रहना यह मोक्ष नामक परमस्थान है ॥ २१२ ॥

सम्यग्ज्ञानका स्वरूप——

सज्ज्ञानमेतत्सुदृशः प्रसादाद्यत्सर्वतत्त्वानि यथावदेव ।
न्यूनातिरेकावपि संशयित्वविपर्ययावप्यपनीय वेत्ति ॥ २१३ ॥

अर्थ– सम्यग्दर्शनके प्रसादसे समस्त तत्त्वोंको न्यूनतारहित, अधिकतारहित तथा संशय और विपरीततासे रहित ज्यों का त्यों ठीक ठीक जानना सम्यग्ज्ञान है ॥ २१३ ॥

मत्या श्रुतेनावधिना च तेन ताभ्यां मनःपर्ययकेवलाभ्याम् ।
भेदैरितीदं महितं परोक्षप्रत्यक्षभूतैर्विदितात्मवेद्यैः ॥ २१४ ॥

अर्थ– आत्मतत्त्वके ज्ञाता महापुरुषोंने उस सम्यग्ज्ञानके पांच भेद कहे हैं– मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यय और केवलज्ञान। इनमेंसे आदिके दो ज्ञान परोक्ष हैं और बाकीके तीन ज्ञान प्रत्यक्ष हैं ॥ २१४ ॥

सम्यक्चारित्रका स्वरूप——

तेनावगम्य व्रतमोहहानौ भोगास्पृहस्याघभियैव साधोः ।
हिंसादितः स्यात्कृतकारितानुमोदैस्त्रियोगैर्विरतिः सुवृत्तम् ॥ २१५ ॥

अर्थ– सम्यग्ज्ञानके द्वारा जानकर चारित्र-मोहके घट जानेपर जो साधु पुरुष भोगोंसे निस्पृह होता हुआ पापके भयसेही मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदनासे हिंसादिपापोंका त्याग करता है उसे सम्यक्चारित्र कहते हैं ॥ २१५ ॥

महार्थदायीदमणुव्रतं च महाव्रतं चेति मतं द्विभेदम् ।
अत्राणुवृत्तं गृहमेधिनां स्यान्महाचरित्रं मुनिपुङ्गवानाम् ॥ २१६ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ– यह सम्यक्चारित्र महान् मोक्ष पुरुषार्थको देनेवाला है। उसके दो भेद हैं– एक गृहस्थोंका अणुव्रत और दूसरा श्रेष्ठ मुनियोंका महाव्रत ॥ २१६ ॥

मोक्षके मार्गमें मतभेद—

कश्चित्सुदृग्धीचरितान्यमूनि न मन्यते त्रीण्यपि मोक्षभूतैः[1]।
द्वे द्वे त्रयोऽमीषु तथैकमेकं त्रयश्च सप्तापि कुदृष्टयस्ते ॥ २१७ ॥

अर्थ– कुछ लोग इन सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रको मोक्षका मार्ग नहीं मानते। कुछ लोग इन तीनोंमेंसे दोकोही मोक्षका मार्ग मानते हैं। अर्थात् कुछ लोग सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानको मोक्षका मार्ग मानते हैं। कुछ लोग सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्रको मोक्षका मार्ग मानते हैं। कुछ लोग सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रको मोक्षका मार्ग मानते हैं। तथा कुछ लोग इन तीनोंमेंसे एक एकको मोक्षका मार्ग मानते हैं। अर्थात् कुछ लोग केवल सम्यग्दर्शनकोही मोक्षका मार्ग मानते हैं, कुछ लोग केवल सम्यग्ज्ञानकोही मोक्षका मार्ग मानते हैं और कुछ लोग केवल सम्यक्चारित्रकोही मोक्षका मार्ग मानते हैं। ये सातोंही मिथ्यादृष्टि हैं ॥ २१७ ॥

विशुद्धवृत्ते[2] सति सम्यगेव विज्ञाय कुर्वन्नहितान्निवृत्तिम् ॥
हिते प्रवृत्तिं च बुधः कृतार्थस्तत्त्त्रयं साधु समस्तमेव ॥ २१८ ॥

अर्थ– विशुद्ध सम्यग्दर्शनके होनेपर सम्यक् प्रकारसे तत्त्वोंको जानकरही ज्ञानी पुरुष अहितका त्याग करता है और हितमें प्रवृत्ति करता है। इस लिये ये तीनों मिलकरही मोक्षका मार्ग हैं ॥ २१८ ॥

१ ल. मोक्षमार्गम्। २ ल. विशुद्धदृक्त्वे

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वने मृतोऽन्धोऽपि चरञ्जवेन[1] खञ्जोऽपि पश्यन्नपि साक्षिपादः ॥
श्रद्धानहीनश्च ततः समस्तैरेवेष्टसिद्धी रुचिबोधवृत्तैः ॥ २१९ ॥

अर्थ– बनमें एक अन्धा दौडता हुआभी जंगलकी आगमें जलकर मर गया और आंख तथा पैरवाला किन्तु श्रद्धानहीन एक लंगड़ा देखते हुएभी जंगलकी आगमें जलकर मर गया अतः सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनोंकी पूर्णतासेही इष्टकी सिद्धि होती है ॥ २१९ ॥

सज्ज्ञानमत्र क्षतभाविकर्म[2] सद्वृत्तमस्तार्जितकृत्स्नकर्म ।
सम्यक्त्वमेतद्द्वयपुष्टिहेतुरिति त्रयं स्यात्सफलं तदेव[3] ॥ २२० ॥

अर्थ– सम्यग्ज्ञान नवीन कर्मोंके बन्धको रोकता है । सम्यक्चारित्र पहलेके बंधे हुए समस्त कर्मोंको नष्ट कर देता है । और सम्यग्दर्शन इन दोनोंको बलवान् बनाता है । इसलिये ये तीनोंही सार्थक हैं ॥ २२० ॥

सम्यक्त्वि दृग्धीचरितान्यमूनि रत्नानि तदात्परिणामजातौ ।
जीवस्य चोत्कृष्टतराणि जन्मक्लेशापनोदाच्च शिवप्रदानात् ॥ २२१

अर्थ– सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ये तीनों रत्न जीवके परिणामोंमें अत्यन्त उत्कृष्ट हैं क्यों कि ये जीवके जन्ममरणके कष्टको दूर करते हैं और उसे मोक्षप्रदान करते हैं ॥२२१॥

रत्नत्रयात्मा सुचिराय धर्मः सार्थेन नाम्ना महितः स जीयात् ।
धरत्यतुल्ये शिवधाम्नि मग्नानुद्धृत्य सत्त्वान्भववारिधेर्यः[4] ॥ २२२

अर्थ– रत्नत्रयसे युक्त आत्माही स्थायी धर्म है और वही 'धर्म' इस सार्थक नामसे शोभित है, क्योंकि वह संसाररूपी समुद्रमें डूबे

१ ल. चरन्दवेन २ ल. मत्राहितभाविकर्म ३ ल. तदेतत् ४ ल. यंत्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हुए प्राणियोंको उससे निकालकर अनुपम मोक्षस्थानमें धरता है। वह सदा जयवन्त हो ॥ २२२ ॥

देशेषु कालेषु कुलेषु सर्वेष्वेकस्थितिः सस्यवदेष धर्मः ।
फलप्रदोऽन्येऽवकरा यथैव बहुप्रकारा विफला भवन्ति ॥ २२३ ॥

अर्थ– सब देशोंमें, सब कालोंमें और सब कुलोंमें एकसी स्थितिवाला यह धर्म धान्यकी तरह फलदायक होता है। इसके सिवाय अन्य सब धर्म कूड़ेके ढेरकी तरह निष्फल होते हैं॥ २२३ ॥

धर्मः समस्ताभ्युदयस्य सिद्धिं निःश्रेयसस्यापि करोत्यवश्यम् ।
तत्रेन्द्रचक्रेश्वरतादिरूपां स्वात्मोपलब्धिं सुखवार्धिमन्यः ॥ २२४ ॥

अर्थ– धर्मसे समस्त अभ्युदयकी और मोक्षकीभी अवश्य प्राप्ति होती है, उनमेंसे इन्द्र और चक्रवर्ती वगैरहके पद अभ्युदय कहे जाते हैं। और स्वात्माकी उपलब्धिरूप सुखके समुद्रको मोक्ष कहते हैं ॥ २२४ ॥

कल्पद्रुचिन्तामणिकामगव्यो धर्मैकवश्याः सुखदाः परेऽपि ।
नो चेद्वसन्त्यत्र वसन्ति तेऽपि प्रयाति लोके किमिति प्रयान्ति॥२२५

अर्थ– कल्पवृक्ष, चिन्तामणि रत्न, कामधेनु तथा अन्यभी सुख देनेवाले पदार्थ एक धर्मकेही अधीन हैं। यदि ऐसा न होता तो धर्मके होनेपरही लोकमें सब क्यों होते और धर्मके चले जानेपर क्यों सब चले जाते ॥ २२५ ॥

साधुका स्वरूप——

आत्माङ्गभेदावगमप्रभावादुद्यद्विरत्योपधिशल्यदूराः ।
सन्तस्तमेवेह चरन्ति धर्मं ये मेरुधीरा गुरवस्त एव ॥ २२६ ॥

१ ल. तत्रेन्द्रचक्रेश्वरतादिराद्यः स्वात्मोपलब्धिः सुखवार्धिरन्यत् ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ– शरीर और आत्माके भेदज्ञानके प्रभावसे, उत्पन्न हुई निवृत्तिके कारण परिग्रहरूपी शल्यका त्याग कर देनेवाले सज्जन पुरुष, जो मेरुके समान स्थिर होते हैं, इसी धर्मका आचरण करते हैं और वे ही गुरु हैं ॥ २२६ ॥

संन्यस्य सङ्गं सकलं विरक्त्या तपांसि सम्यक् सततं चरन्तः ।
सम्यक्त्वबोधाचरणैः समेताः सन्तोषदा मे शमिनोऽद्य सन्तु॥२२७

अर्थ– जो समस्त परिग्रहको त्याग कर विरक्त होते हैं और सदा भली प्रकारसे तप का आचरण करते हैं तथा जो सम्यग्दर्शन; सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रसे सहित हैं, वे शान्त महात्मा आज मुझे सन्तोष प्रदान करें ॥ २२७ ॥

अष्टाधिकायामपि विंशतौ ये दीव्यन्ति मूलेषु गुणेषु सिद्ध्यै ।
शुद्धात्मचिन्ताः स्वहितैषिलोकैस्त एव सेव्या गुरवः सदापि ॥२२८

अर्थ– जो मोक्षकी प्राप्तिके लिये अट्ठाईस मूल गुणोंको पालते हैं और शुद्ध आत्मतत्त्वका विचार करते रहते हैं अपना हित चाहनेवाले लोगोंको सदा उन्हीं गुरुओंकी सेवा करनी चाहिये ॥ २२८ ॥

आचार्यपरमेष्ठीका स्वरूप—

आचार्यवर्याः स्वपदं दिशन्तु स्वयं च शिष्यांश्च सदा चरन्ति ।
ये चारयन्त्याचरणानि पञ्च भाक्तान्युदाराणि च वास्तवानि ॥२२९

अर्थ– दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार इन महान और वास्तविक पञ्चाचारोंका जो स्वयं आचरण करते हैं और अपने शिष्योंसे आचरण कराते हैं वे श्रेष्ठ आचार्य अपना पद प्रदान करें ॥ २२९ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मोक्षप्रदैर्मूलगुणैश्च सर्वैरप्युत्तरैरात्मगुणैश्च रम्यैः ।
समन्विता ये भुवि तन्वते ते मार्गप्रकाशं गणिनो महान्तः ॥ २३०

अर्थ– मोक्षको देनेवाले समस्त मूलगुणों और सुन्दर उत्तर गुणोंसे युक्त होकर जो लोकमें मोक्षमार्गको प्रकाशित करते हैं वे महान् आचार्य होते हैं ॥ २३० ॥

उपाध्यायपरमेष्ठीका स्वरूप—

उपेत्य शिष्यैरुदितप्रमोदैरधीयते मोक्षपथप्रदर्शि ।
शास्त्रं यतो मह्यमर्मी च सार्थोपाध्यायसंज्ञाः स्वपदं दिशन्तु ॥२३१

अर्थ– जिनके पास प्रसन्नतापूर्वक जाकर शिष्यगण मोक्ष–मार्गको बतलानेवाले शास्त्रको पढ़ते हैं, वे सार्थक नामवाले उपाध्याय परमेष्ठी मुझे अपना पद प्रदान करें ॥ २३१ ॥

ममाशु सिद्धिं मधुरां महान्तो दिशन्तु ते शिष्यजनाय शिष्टाः ।
परार्थनिष्ठां परमागमं ये व्याख्यान्ति वीतैहिकविश्ववाञ्छाः ॥२३२॥

अर्थ– जिनकी इस लोकसम्बन्धी समस्त इच्छाएँ दूर होगई हैं और जो परमागमका व्याख्यान करते हैं वे महान् शिष्ट उपाध्याय परमेष्ठी मुझे मोक्ष प्रदान करें और शिष्य लोगोंको परमार्थमें लगनेकी श्रद्धा प्रदान करें ॥ २३२ ॥

साधुपरमेष्ठीका स्वरूप—

सम्यक्त्वबोधाचरणानि शस्तान्यशेषदुःखाहतिकारणानि ।
ये साधयन्त्यन्वहमत्र सिद्ध्यै ते साधवो मे वितरन्तु सिद्धिम् ॥२३३॥

अर्थ– जो प्रतिदिन मुक्तिके लिये समस्त दुःखोंको नष्ट करनेमें कारण सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका साधन करते हैं वे साधु मुझे सिद्धि प्रदान करें ॥ २३३ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

निराकृतान्तस्तमसो निषेव्या दिगम्बरैः सन्ततवृत्तदेहाः ।
सुनिर्मलाः साधुसुधांशवो मे हरन्तु सन्तापमदृष्टपूर्वाः ॥ २३४ ॥

अर्थ– जिन्होने अभ्यन्तरके अन्धकारको दूर कर दिया है जो दिशारूपी वस्त्रको धारण करते हैं अर्थात् नग्न रहते हैं, निरन्तर वृत्त (चारित्र) से युक्त जिनका शरीर है और जो अत्यन्त निर्मल हैं, तथा जिनको कभी पहले देखनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ वे साधुरूपी चन्द्रमा मेरे सन्तापको दूर करें ।

भावार्थ– यहां साधुको ऐसा चन्द्रमा बतलाया है जो कभी पहले नहीं देखा गया । क्यों कि चन्द्रमा अभ्यन्तरके अन्धकारको दूर नहीं करता किन्तु साधुरूपी चन्द्रमा अभ्यन्तरके अन्धकारको अर्थात् अज्ञान-रूपी अन्धकारको दूर कर देता है । चन्द्रमाका शरीर सदा वृत्त (गोल) नहीं रहता, किन्तु साधुरूपी चन्द्रमाका वृत्त (चारित्र) ही शरीर होता है । चन्द्रमा अत्यन्त निर्मल नहीं होता–उसमें कलंक होता है, किन्तु साधुरूपी चन्द्रमा कलंकसे रहित होता है ॥ २३४ ॥

अर्च्याः सहार्थाभिधयेति सर्वैराचार्यमुख्या गुरवस्त्रयोऽपि ।
असारसंसारविनाशहेतोराराधनीया अनिशं मया स्युः ॥ २३५ ॥

अर्थ– इस प्रकार अपने सार्थक नामके कारण सभीके द्वारा पूज्य अचार्य आदि ये तीनों ही गुरु इस असार संसारका विनाश करनेके लिये सदा मेरे आराध्य हो, अर्थात् मैं उनकी सदा आराधना करूं ॥ २३५ ॥

सूक्त्यैव तेषां भवभीरवो ये गृहाश्रमस्थाश्चरितात्मधर्माः ।
त एव शेषाश्रमिणां सहार्य्या धन्याः स्युराशाधरसूरिमुख्याः ॥२३६॥

१ ल. सर्वेऽप्या २ ल. सहायधन्याः

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ– उन आचार्य वगैरहके सद्वचनोंको सुनकर संसारसे डरे हुए जो गृहस्थाश्रममें रहते हुए आत्मधर्मका पालन करते हैं और बाकीके ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ तथा साधु आश्रममें रहनेवालोंके सहायक होते हैं. वे आशाधर सूरि प्रमुख श्रावक धन्य हैं ॥ २३६ ॥

आराध्यमानामलदर्शनास्ते धर्मेऽनुरक्ताः शमिनां सदापि ।
एकं यथाशक्ति भजन्त्यशल्यमेकादशाणुव्रतिकास्पदेषु ॥ २३७ ॥

अर्थ– सदाही मुनियोंके धर्मसे प्रेम रखते हुए वे श्रावक निर्मल सम्यग्दर्शनकी आराधना करते हैं और माया, मिथ्यात्व, निदान इन तीनों शल्योंको छोड़कर अर्थात् निःशल्य होकर श्रावकके ग्यारह दर्जों-मेंसे यथाशक्ति एक प्रतिमाका पालन करते हैं ॥ २३७ ॥

ते पात्रदानानि जिनेन्द्रपूजाः शीलोपवासानपि चिन्वते च ।
न्यायेन कालादसतीश्वरोपभोगस्य शर्मानुभवन्ति चाक्षम् ॥ २३८ ॥

अर्थ– वे श्रावक पात्रोंको दान देते हैं, जिनेन्द्रदेवकी पूजा करते हैं, शीलका पालन करते हैं, पर्वके दिनोंमें उपवास करते हैं। योग्यकालमें इन्द्रियोंके सुखको भोगते हैं। अर्थात् अपनी स्त्रीका असतीपना-जाननेवाला पुरुष उसके ऊपर आसक्त न होकर उदा-सीनतासे उसका उपभोग लेता है वैसे इन्द्रियोंके विषयोंमे लंपट न होकर उनके सुखका उपभोग वे श्रावक लेते हैं और इन्द्रियोंके सुखको भोगते हैं ॥ २३८ ॥

कर्तुं तपःसंयमदानपूजाः स्वाध्यायमभ्याश्रितचारुवार्ताः ।
ते तद्भवं श्रीजिनसूक्तशुद्धया पक्षादिभिश्चाघलवं क्षिपन्ति ॥ २३९ ॥

अर्थ– न्यायपूर्वक उत्तम आजीविका करनेवाले वे गृहस्थ तप, संयम, दान, पूजा और स्वाध्यायको करनेके लिये आजीविकामें होने-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वाले पापके अंशको श्रीजिनेन्द्रदेवके द्वारा कही गई शुद्धिसे अर्थात् प्रायश्चित्त विधानसे और पक्ष आदिसे दूर करते हैं ॥

भावार्थ– पूजन, दान, स्वाध्याय, तप और संयम ये पांच श्रावकके कर्तव्य हैं। परन्तु इन पांचोंही कार्योंका पालन न्यायपूर्वक आजीविकाके विना नहीं होता। और आजीविकाके साधन जो कृषि आदि कार्य हैं, वे हिंसा आदि पापोंसे अछूते नहीं हैं। इस लिये पूजा, दान, तप, संयम और स्वाध्यायको करनेके लिये गृहस्थको खेती, व्यापार आदि आरम्भोंमें लगनेवाले पापको जिनेन्द्र भगवान्के द्वारा कहे हुए प्रायश्चित्तसे अथवा पक्ष, चर्या और साधनरूप श्रावक धर्मके पालनसे दूर करना चाहिये। मैं धर्मके लिये, देवताके लिये, मंत्रसिद्ध करनेके लिये, औषधके लिये और आहार आदिके लिये कभीभी संकल्पपूर्वक त्रसजीवोंका घात नहीं करूंगा इस प्रकार प्रतिज्ञा करके संपूर्ण त्रसजीवोंकी संकल्पी हिंसाके त्यागके साथ साथ स्थूल झूठ, स्थूल चोरी आदि पापोंके त्यागको पक्ष कहते हैं। और धीरे धीरे परिणामोंमें वैराग्यकी वृद्धि होनेपर कृषि आदि कामोंमें लगे हुए पापोंको प्रायश्चित्तके द्वारा दूर करके, अपने घरबारका सब भार अपने उत्तराधिकारीको सौंपकर घर छोड़ देनेको चर्या कहते हैं। तथा मरणसमय उपस्थित होनेपर चारों प्रकारके आहार, मन, वचन, कायसम्बन्धी चेष्टा और शरीरसे ममत्वको त्यागकर निर्मल ध्यानके द्वारा अपने रागादिदोषोंके दूर करनेको साधन कहते हैं ॥ २३९ ॥

त एव मान्या भुवि धार्मिकौघा धर्मानुरक्ताखिलभव्यलोकैः ।
सुधानुरक्ता ह्यनुरागसूतिमाधारपात्रेष्वपि तन्वतेऽस्याः ॥ २४० ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ– धर्मके अनुरागी समस्त भव्यजीवोंके द्वारा ऐसेही धर्मात्मा पुरुष पृथ्वीपर आदरणीय होते हैं। ठीकही है, अमृतके प्रेमी मनुष्य जिन पात्रोंमें अमृत रखा जाता है उन पात्रोंमेंभी अनुराग करते हैं ॥ २४० ॥

इत्युक्तमाप्तादिकषट्करूपं संशृण्वतोऽत्रैव दृढा रुचिः स्यात् ।
सज्ज्ञानमस्याश्चरितं ततोऽस्मात्कर्मक्षयोऽस्मात्सुखमप्यदुःखम् ॥२४१॥

अर्थ– इस प्रकार देव, शास्त्र, गुरु और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रका स्वरूप कहा, इसको सुननेसे इनमें दृढ़ श्रद्धान होता है। दृढ़ श्रद्धान होनेसे सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र होते हैं, उनसे कर्मोंका क्षय होता है। कर्मोंका क्षय होनेसे दुःखसे रहित सुख होता है ॥ २४१ ॥

आप्तादिरूपमिति सिद्धमवेत्य सम्यगेतेषु रागमितरेषु च मध्यभावम् ।
ये तन्वते बुधजना नियमेन तेऽर्हद्दासत्वमेत्य सततं सुखिनो भवन्ति॥२४२॥

अर्थ– जो ज्ञानी पुरुष ऊपर कहे हुए आप्त आदिके स्वरूपको अच्छी तरहसे जानकर उनमें राग करते हैं और अन्य कुदेवता वगैरहमें माध्यस्थ्यभाव रखते हैं अर्थात् अन्य कुदेवोंसे न राग करते हैं और न द्वेष। वे नियमसे अर्हन्त भगवान्के सेवक बनकर सदा सुखी रहते हैं ॥ २४२ ॥

इत्यर्हद्दासकृतं भव्यकण्ठाभरणं समाप्तम् ।

श्रीअर्हद्दासकृत भव्यजनकण्ठाभरण समाप्त हुआ ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जैन संस्कृति संरक्षक संघ शोलापुरसे
प्रकाशित ग्रंथ

(हिन्दी-विभाग)

१ तिलोयपण्णति	.... प्रथम भाग(द्वितीय आवृत्ति)	कि.रु.	१६
२ तिलोयपण्णति	... द्वितीय भाग	,,	१६
३ यशस्तिलक और भारतीय संस्कृति अंग्रेजी प्रबन्ध		,,	१६
४ पाण्डवपुराण	.... श्री शुभचन्द्राचार्यकृत	,,	१२
५ भव्यजन कण्ठाभरण	श्री अर्हद्दास कविकृत	,,	१।·
६ जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति	.... श्रीपद्मनन्द्याचार्य रचित	छप रहे हैं। शीघ्र प्रकाशित होंगे।	
७ प्राकृत व्याकरण	.... श्री त्रिविक्रमकृत		
८ हैद्राबाद शिलालेख			

[मराठी-विभाग]

१ रत्नकरंड श्रावकाचार	पं. सदासुखजीकृत	किंमत रु.	१०
२ आर्या दशभक्ति	पं. जिनदासजीकृत	,, रु.	१
३ श्री पार्श्वनाथ-चरित्र	स्व. हिराचंद नेमचंदकृत	आणे	८
४ श्री महावीर-चरित्र	स्व. हिराचंद नेमचंदकृत	आणे	८
५ साहित्याचार्य पं. पन्नालालजी व महापुराण-	ब्र. जी. गौ. दोशीकृत	आणे	४
६ मराठी तत्त्वार्थसूत्र	ब्र. जी. गौ. दोशीकृत	आणे	१२
७ तत्त्वसार व महावीर-चरित्र (आर्यावृत्तांत)	श्रीदेवसेनाचार्यकृत	आणे	२
८ ब्र.जीवराजभाईचें जीवन-चरित्र	सुभाषचंद्र अक्कोळेकृत	आणे	४

९ भ. कुंदकुंदाचार्यांचें रत्नत्रय (समयसारादि तीन ग्रंथाचा सारांश) छापत आहे

For Private And Personal Use Only